शिक्षक-दिवस, १९७३

अस्तित्व

की खोज

सम्पादक
शिवरतन थानवी
पुरुषोत्तमलाल तिवारी

आमुख

राष्ट्र-निर्माण के कार्यों मे शिक्षक की भूमिका निर्विवाद है। समाज शिक्षक के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने की दृष्टि से प्रतिवर्ष शिक्षक-दिवस का आयोजन करता है।

शिक्षा विभाग, राजस्थान इस अवसर पर शिक्षकों का सम्मान कर उन्हें राज्य स्तर पर पुरस्कृत करता है और उनके कार्यकारी जीवन के सृजनशील क्षणो को सकलनो के रूप में प्रकाशित करता है।

इन संकलनो मे शिक्षको की क्रियाशील अनुभूतियाँ, साहित्य-सर्जना के अखिल भारतीय प्रवाह मे उनकी संवेदनशीलता तथा उनकी सामाजिक-सास्कृतिक समकालीनता के स्वर मुखरित होते हैं और उन्हे यहाँ एकत्र रूप में देखा और पढ़ा जा सकता है।

सन् १९६७ से विभागीय प्रवर्तन द्वारा सृजनशील शिक्षकों की रचनाओ के प्रकाशन का जो उपक्रम एक संग्रह के प्रकाशन से आरम्भ किया गया था, वह अब प्रतिवर्ष पाँच प्रकाशनो की सीमा तक पहुँचा है। प्रसन्नता की बात है कि भारत-भर में इस अनूठी प्रकाशन-योजना का स्वागत हुआ है और इससे सृजनशील शिक्षकों की अभिरुचियों को प्रखरतर होने की प्रेरणा मिली है।

सन् १९७२ तक इस प्रकाशन-क्रम मे बाईस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और इस माला मे इस वर्ष ये पाँच प्रकाशन और सम्मिलित किए जा रहे हैं

१. खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी-संग्रह)
२. धूप के पखेरू (कविता-संग्रह)
३. रेजगारी का रोजगार (रंगमंचीय एकांकी-संग्रह)
४. अस्तित्व की खोज (विविध रचना-संग्रह)
५. जूना बेली : नुवा बेली (राजस्थानी रचना-संग्रह)

राजस्थान के उत्साही प्रकाशको ने इस योजना मे आरम्भ से

आशा है, पिछले प्रकाशनों की भाँति ये प्रकाशन भी लोकप्रिय होंगे और सृजनशील शिक्षक अधिकाधिक संख्या में अपने प्रकाशनों के सहभागी बनेंगे।

शिक्षक-दिवस, १९७३

र० सि० कुमट
निदेशक

प्राक्कथन

शिक्षक-दिवस प्रकाशन-योजना के इस सातवें वर्ष मे राजस्थान के सृजनशील शिक्षको का विविध रचना-संकलन 'अस्तित्व की खोज' नाम से प्रस्तुत है।

जीवन के विचारात्मक क्षण, अनुभूति के क्षण, टीस और खीझ से विम्बात्मक सबंध के क्षण अपने को किसी रीतिबद्ध ढाँचे में बाँध-बूँधकर ही अभिव्यक्त करें, यह जरूरी नही। ढाँचे और साँचे मे बाँधकर बात को बतियाना सायास ही संभव हो पाता है।

इस सकलन मे अनायास अभिव्यक्तियाँ भी हैं और सायास कृतियाँ भी। इसमे जहाँ मुक्त शैली के लेख हैं, वहाँ तड़ित भाव से फूट पड़ी विचार-कणिकाएँ भी है. द्रष्टा का अनुभव और प्रगल्भ भाव से की गई टिप्पणियाँ भी हैं। वे सब रचनाएँ निबन्ध, हास्य और व्यग्य, डायरी, यात्रा, सस्मरण-रेखाचित्र जैसे खण्डो मे संकलित करके रखी गई हैं, यद्यपि वैसा वर्गीकरण मात्र सुविधा की दृष्टि से किया गया है।

सम्पादकों को खेद है तो इतना-सा कि निबन्धो मे गतिशील समसामयिक जीवन की ज्वलन्त समस्याएँ अधिक नही समेटी जा सकी हैं. डायरी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, फीचर जैसी विधाओ या शैलियों मे सामग्री कही अल्पातिअल्प और कहीं अनुपलब्ध रही है। अगले प्रकाशन मे इन पक्षो पर हमारे लेखक यत्नशील होंगे ही।

बाकी, यह जो न्यास बन पाया है उसमे परिप्रेक्ष्य की व्यापकता तो है ही। हम तो लेखक की बात के आस्वादक ही होंगे, अधिक-से-अधिक उसके सवीक्षक या समीक्षक भी।

जिनके सहभागित्व से यह सकलन रूपायित हो पाया है, उन सबकी प्रतिभा मे विश्वास के साथ, पाठको की सेवा में यह प्रकाशन सादर प्रस्तुत है।

बीकानेर :
शिक्षक-दिवस, १९७३

—सम्पादक

अनुक्रम

निबन्ध

डायरी

यात्रा

संस्मरण तथा रेखाचित्र

हास्य तथा व्यंग

निबन्ध

अस्तित्व की खोज

□

श्यामसुन्दर व्यास

सागर और बूंद का सहवास आनंद की चरम परिणति पर था। बूंद स्वयं सागर होने जा रही थी। किन्तु सहसा बूंद ने अपने अस्तित्व की कल्पना की। विचार-कल्पना के साथ-ही-साथ बूंद अपने महान्-चिरंतन आश्रय-स्थल से विलग हो गयी और अस्तित्व की खोज में चल पड़ी।

सरिता, गिरि की गहन घाटियों को पार कर वह आगे बढ़ती रही और अस्तित्व का सम्मोह पोषित होता रहा। कालक्रमेण जीवन-प्रतिष्ठा एवं अमरता की भूख बढ़ी। अपनी सृष्टि-संरचना की कल्पना साकार हो उठी। चारों ओर वैभव, भौतिक सुखों के ढेर के ढेर दृष्टि में आने लगे। पार्थिव मन भौतिक रसास्वादन के आनंद में डूब गया। सुख-उपभोग बढ़े। ये बड़े आनंददायी थे, पर स्थिर न थे। इन्हें स्थिर करने का बोध हुआ, पर मन पंगु था, असमर्थ था अतः ऐसा हो न सका। फलतः दुःख-दैन्य बढ़ा। शनैः शनैः सजीव आनंद तिरोहित हो चला, जीवन में घोर निराशा का संचरण हुआ। अस्तित्व के प्रति उपेक्षा भाव जगे। बूंद ने अपने-आपको कोसना शुरू किया। सम्पूर्ण जीवन संघर्ष का घर बन गया और बूंद छटपटाने लगी।

दूर-दूर तक देखा। एक सरिता अपनी अगणित जलधाराओं में लिपटी प्रफुल्लता से बह रही है। उसके जीवन में उल्लास है, अमृत्व है, आशा की अमर भावना है।

बूंद दौड़कर निकट आयी और बोली— बहन ! तुम्हारे असीम आनंद का क्या रहस्य है ?

उत्तर मिला—समर्पण मेरा जीवन है।

बूंद ने विनम्र अभ्यर्थना की—बहन ! क्या मुझे भी यह गहन ज्ञान दोगी ?

सरिता ने हँसकर उत्तर दिया—तुम्हारी अस्तित्व-भावना ने तुम्हें एकाकी बनाया है।

संवाद की तलाश

□

क्षमा चतुर्वेदी

शिक्षण जगत् में बढ़ रही अनेक समस्याओं पर अगर गंभीरता से विचार किया जाय तो प्रमुख कारण यही दृष्टिगोचर होता है कि कहीं कुछ टूट गया है। शिक्षक जो आज वेतनभोगी द्रोणाचार्य के रूप में उभरता हुआ वर्ग है, वह मात्र आकर छात्रों को रटत् शब्दावली में किताबों को उल्टा उगल देने में ही और छात्रों को बिना किसी तर्क के उसे स्वीकार करने को ही अनुशासन और ज्ञान-प्राप्ति की एकमात्र मुद्रा समझता है। उसके सामने प्रश्न पूछ लेना या किसी तर्क पर भी उतर आना वह अपनी तौहीन समझता है। एक बात और जो नव-बौद्धिक वर्ग में उभर रही है, वह यह है कि वह अन्य किसी प्रकार के नैतिक मूल्य को उपयोगी भी नहीं समझता है। शिक्षा का उद्देश्य छात्र का सर्वाङ्गीण विकास है या उसकी नैसर्गिक वृत्तियों का उद्घाटन होना है, या लोकतान्त्रिक जीवन-पद्धति के अनुरूप नागरिक तैयार करना है, यह सब कुछ किताबी बात रह गई है। शिक्षक मात्र सरकारी कर्मचारी रह गया है—जोकि शिक्षण संस्थाओं को उसी तरह चलाता जा रहा है जैसे नगरपालिका या पुलिस थाना या अन्य कोई सरकारी दफ्तर चलता है।

और छात्र समुदाय ! वह भाव यह मानकर चलता है कि उसका जीवन के महत् लक्ष्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब सारा समाज ही पतनोन्मुख है तब मुझे ही प्रगति से क्या लेना है। वह शिक्षण संस्थानों को मात्र मनोरंजन का केन्द्र मान बैठा है। शिक्षक का उसकी निगाहों में कहीं कोई सम्मान नहीं रह गया है। वह एक अलार्म घड़ी है जिसका काम कहीं न कहीं बजना ही है।

आज अगर कहीं पर भी बहस होती है तो छात्र समुदाय सारा दोष अपने शिक्षक के ऊपर रखकर बरी हो जाते हैं तो दूसरी ओर शिक्षक छात्र समुदाय को ही अनुशासनहीन तथा अराजक की सजा देकर अपने-आपको मुक्त समझते हैं।

प्रश्न यहीं समाप्त नहीं हो जाता है। इस समस्या का मूल कारण यही है कि आज शिक्षण संस्थाएँ भी सरकारी कार्यालय या कारखाने की शक्ल में

इस तरह फिर तृणात्मक होकर विघटन की ओर मुड़ जाती है। यही कारण है कि शिक्षण संस्थाएँ हड़ताल, घेराव, आगजनी का केन्द्र बनती चली जा रही हैं। मामूली-से-मामूली बातें जिनका समाधान बातचीत से हो सकता है, उनके समाधान भी संघर्षों में होने लग गए हैं और शिक्षक वर्ग उदासीनता से यह सब देख रहा है। वह कहीं पर इन छात्रों की किसी भी समस्या में शरीक नहीं हो पाता है। और तब छात्र अपने ही शिक्षक को वह सम्मान नहीं देता है जिसका कि वह हक़दार है।

इसलिए आवश्यक है कि आज इन सम्बन्धों पर गंभीरता से विचार किया जाए। क्या कारण है कि आज छात्र समुदाय शिक्षकों के प्रभाव से मुक्त होकर प्रभावहीन, निष्क्रिय, अराजक वातावरण में संलग्न हो गया है। संवाद की तलाश इसलिए आज जरूरी है। छात्र समुदाय और उसके शिक्षक के बीच में संवाद को पुन गति देनी होगी तभी शिक्षण संस्थाओं के स्वरूप में परिवर्तन आ सकता है और वे आशाओं के अनुरूप गतिशील हो सकती हैं।

प्रत्येक गौरवर्ण वाले को अंग्रेज ही समझते हैं। जो उनके साथ हुआ जाने दीजिये, बस इतना समझ लीजिये कि बड़ी मुश्किल से तीन मास ही भारत रह सके जबकि उन्हें एक वर्ष रहना था।

आप चाहे जो भी हों, यदि आप भारत में रहते हैं तो शोर से भली-भाँति परिचित होंगे। यदि डॉक्टर हैं तो मरीजों के शोर से आप यदि खुद मरीज हो जायें तो आश्चर्य चकित होने की आवश्यकता नहीं। यदि इंजीनियर हैं तो आपको मशीनों और आदमी के शोर के मुकाबले का अनुभव होगा ही। यदि आप अध्यापक हैं तो ऐस्प्रो और एनासिन आप वैसे ही अपने-आप रखते होंगे जैसे हिप्पी अपने पास 'हशिश' रखते हैं। अध्यापक के लिए तो शोर विद्यालय में पहुँचने के साथ ही शुरू हो जाता है। उपस्थिति-अंकन के समय ऐसा लगता है जैसे आप कक्षा में न होकर सब्जीमण्डी में हैं।

लोग शांति के लिए मन्दिर जाते हैं। दुर्भाग्य से मेरे मकान के पास ही एक चर्च, एक मस्जिद व एक मन्दिर है। आप सोचते होंगे कि मैं बड़ा नास्तिक हूँ कि भगवान के तीन-तीन घर मेरे घर के पास हैं और इसे मैं दुर्भाग्य कहता हूँ। किन्तु यदि आप मेरे घर कभी भी तशरीफ लायें तो आप भी मेरे से सहानु-भूति करेंगे। सवेरे चार बजे ही मुल्ला की अज़ान से नींद में जो शॉक लगता है उसे बस कुछ मत पूछिये—ऐसा लगता है किसी ने मुझे आसमान से नीचे पटक दिया हो। फिर शीघ्र ही मन्दिर में घंटे बजने शुरू हो जाते हैं। घंटे इतने जोर से व इतनी देर तक बजते हैं कि ऐसा लगता है या तो ईश्वर बहरा है या फिर घंटे सुनकर बहरा अवश्य हो गया है। और जब कहीं अखण्ड कीर्तन होता है तो—खुदा खैर करे—मुझे घर छोड़कर वन-भ्रमण करना पड़ता है। वैसे मैं मन्दिर नहीं जाता पर कभी-कभी जाता हूँ और प्रार्थना करता हूँ—भगवान् अखण्ड कीर्तन के प्रोग्राम को कैन्सिल कर दो या फिर कम-से-कम पोस्टपोन तो कर ही दो। चर्च की घंटियां भी सवेरे आठ बजे बजने लगती हैं।

मेरे एक मित्र हैं। मैं उन्हें बहुत भाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि वे कुछ बहरे हैं। वे अपने-आपको तब तक दुखी मानते थे जब तक उन्होंने 'हियरिंग एड' नहीं खरीदी थी। एक दिन 'हियरिंग एड' लगाकर वह मेरे घर आये तो मंदिर के घंटों की आवाज सुनकर उन्होंने तुरन्त 'हियरिंग एड' हटा ली और चैन से बैठ गये। अब वह 'हियरिंग एड' का कम ही प्रयोग करते हैं। परिवार नियोजन के शब्दों में उनके परिवार में 'घणो टाबर घणो दुख है' क्योंकि उनके पाँच लड़कियाँ तथा तीन लड़के हैं। किन्तु उनके इस बहरेपन ने उन्हें सुखी बना दिया। जब बच्चे लड़ते-झगड़ते हैं तो वे तुरंत अपनी 'हियरिंग एड' हटा लेते हैं। इस प्रकार जब उनकी पत्नी उनके रात को देर से लौटने के कारण उन पर बरसती है तो भी उनका 'हियरिंग एड' उनकी जेब में होता है।

प्रत्येक गौरवर्ण वाले को अंग्रेज ही समझते हैं। जो उनके साथ हुआ जाने दीजिये, बस इतना समझ लीजिये कि बड़ी मुश्किल से तीन मास ही भारत रह सके जबकि उन्हें एक वर्ष रहना था।

आप चाहे जो भी हों, यदि आप भारत में रहते हैं तो शोर से भली-भाँति परिचित होंगे। यदि डॉक्टर हैं तो मरीजों के शोर से आप यदि खुद मरीज हो जायें तो आश्चर्य चकित होने की आवश्यकता नहीं। यदि इंजीनियर हैं तो आपको मशीनों और आदमी के शोर के मुकाबले का अनुभव होगा ही। यदि आप अध्यापक हैं तो ऐस्प्रो और एनासिन आप वैसे ही अपने-आप रखते होंगे जैसे हिप्पी अपने पास 'हशिश' रखते हैं। अध्यापक के लिए तो शोर विद्यालय में पहुँचने के साथ ही शुरू हो जाता है। उपस्थिति-अंकन के समय ऐसा लगता है जैसे आप कक्षा में न होकर सब्जीमण्डी में हैं।

लोग शांति के लिए मंदिर जाते हैं। दुर्भाग्य से मेरे मकान के पास ही एक चर्च, एक मस्जिद व एक मन्दिर है। आप सोचते होंगे कि मैं बड़ा नास्तिक हूँ कि भगवान के तीन-तीन घर मेरे घर के पास हैं और इसे मैं दुर्भाग्य कहता [illegible]। किन्तु यदि आप मेरे घर कभी भी तशरीफ लायें तो आप भी मेरे से सहानु-[illegible] करेंगे। सवेरे चार बजे ही मुल्ला की अजान से नींद में जो शॉक लगता [illegible] बस कुछ मत पूछिये—ऐसा लगता है किसी ने मुझे आसमान से नीचे [illegible] दिया। [illegible] फिर शीघ्र ही मन्दिर में घंटे बजने शुरू हो जाते हैं। घंटे इतने [illegible] देर तक बजते हैं कि ऐसा लगता है या तो ईश्वर बहरा है [illegible] बहरा अवश्य हो गया है। और जब कहीं अखण्ड कीर्तन [illegible] खैर करे—मुझे घर छोड़कर वन-भ्रमण करना पड़ता है। [illegible] जाता पर कभी-कभी जाता हूँ और प्रार्थना करता हूँ—भगवान् [illegible] को केन्सिल कर दो या फिर कम-से-कम पोस्टपोन तो [illegible] की घंटियां भी सवेरे आठ बजे बजने लगती है।

[illegible] मित्र हैं। मैं उन्हें बहुत भाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि वे कुछ [illegible] को तब तक दुखी मानते थे जब तक उन्होंने 'हियरिंग [illegible]' थी। एक दिन 'हियरिंग एड' लगाकर वह मेरे घर आये तो [illegible] आवाज सुनकर उन्होंने तुरन्त 'हियरिंग एड' हटा ली और चैन [illegible]र वह 'हियरिंग एड' का कम ही प्रयोग करते हैं। परिवार नियोजन [illegible] परिवार में 'घणो टाबर घणो दुख है' क्योंकि उनके पाँच [illegible] तीन लड़के हैं। किन्तु उनके इस बहरेपन ने उन्हें सुखी बना [illegible] लड़ते-झगड़ते हैं तो वे तुरंत अपनी 'हियरिंग एड' हटा लेते [illegible] उनकी पत्नी उनके रात को देर से लौटने के कारण उन पर [illegible] तो उनका 'हियरिंग एड' उनकी जेब में होता है।

प्रत्येक गोरवर्ण वाले को अंग्रेज ही समझते हैं। जो उनके साथ हुआ जाने दीजिये, बस इतना समझ लीजिये कि बड़ी मुश्कल से तीन मास ही भारत रह सके जबकि उन्हें एक वर्ष रहना था।

आप चाहे जो भी हों, यदि आप भारत में रहते हैं तो शोर से भली-भाँति परिचित होंगे। यदि डॉक्टर हैं तो मरीजों के शोर से आप यदि खुद मरीज हो जायें तो आश्चर्य चकित होने की आवश्यकता नहीं। यदि इंजीनियर हैं तो आपको मशीनों और आदमी के शोर के मुकाबले का अनुभव होगा ही। यदि आप अध्यापक हैं तो ऐस्प्रो और एनासिन आप वैसे ही अपने-आप रखते होंगे जैसे हिप्पी अपने पास 'हशिश' रखते हैं। अध्यापक के लिए तो शोर विद्यालय में पहुँचने के साथ ही शुरु हो जाता है। उपस्थिति-अंकन के समय ऐसा लगता है जैसे आप कक्षा में न होकर सब्जीमण्डी में हैं।

लोग शांति के लिए मन्दिर जाते हैं। दुर्भाग्य से मेरे मकान के पास ही एक चर्च, एक मस्जिद व एक मन्दिर है। आप सोचते होंगे कि मैं बड़ा नास्तिक हूँ कि भगवान के तीन-तीन घर मेरे घर के पास हैं और इसे मैं दुर्भाग्य कहता हूँ। किन्तु यदि आप मेरे घर कभी भी तशरीफ लायें तो आप भी मेरे से सहानुभूति करेंगे। सवेरे चार बजे ही मुल्ला की अज़ान से नींद में जो शॉक लगता है उसे बस कुछ मत पूछिये—ऐसा लगता है किसी ने मुझे आसमान से नीचे पटक दिया हो। फिर शीघ्र ही मन्दिर में घंटे बजने शुरू हो जाते हैं। घंटे इतने जोर से व इतनी देर तक बजते हैं कि ऐसा लगता है या तो ईश्वर बहरा है या फिर घंटे सुनकर बहरा अवश्य हो गया है। और जब वहीं अखण्ड कीर्तन होता है तो—खुदा खैर करे—मुझे घर छोड़कर वन-भ्रमण करना पड़ता है। वैसे मैं मन्दिर नहीं जाता पर कभी-कभी जाता हूँ और प्रार्थना करता हूँ—भगवान् अखण्ड कीर्तन के प्रोग्राम को केन्सिल कर दो या फिर कम-से-कम पोस्टपोन तो कर ही दो। चर्च की घंटियां भी सवेरे आठ बजे बजने लगती हैं।

मेरे एक मित्र हैं। मैं उन्हें बहुत भाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि वे कुछ बहरे हैं। वे अपने-आपको तब तक दुखी मानते थे जब तक उन्होंने 'हियरिंग एड' नहीं खरीदी थी। एक दिन 'हियरिंग एड' लगाकर वह मेरे घर आये तो मंदिर के घंटों की आवाज सुनकर उन्होंने तुरन्त 'हियरिंग एड' हटा ली और चैन से बैठ गये। अब वह 'हियरिंग एड' का कम ही प्रयोग करते हैं। परिवार नियोजन के शब्दों में उनके परिवार में 'घणो टाबर घणो दुःख है' क्योंकि उनके पाँच लड़कियाँ तथा तीन लड़के हैं। किन्तु उनके इस बहरेपन ने उन्हें सुखी बना दिया। जब बच्चे लड़ते-झगड़ते हैं तो वे तुरंत अपनी 'हियरिंग एड' हटा लेते हैं। इस प्रकार जब उनकी पत्नी उनके रात को देर से लौटने के कारण उन पर बरसती हैं तो भी उनका 'हियरिंग एड' उनकी जेब में होता है।

ओफ़, कितना शोर है !

सिराजुद्दीन 'सिराज'

आधुनिक युग को कई संज्ञाएँ दी गई जैसे—विज्ञान का युग, मशीन का युग, आ
किन्तु मेरे विचार में तो आधुनिक युग को 'शोर का युग' कहा जाना चाहि
आज आप कहीं भी चले जाइये, शोर पायेंगे। रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, पा
यहाँ तक कि विद्यालय भी शोर से मुक्त नहीं। पाश्चात्य देश तो शोर से अत्यधि
पीड़ित हैं। वहाँ थोड़ी भी शांति के लिए लोग बड़ी-से-बड़ी क़ीमत देने
तैयार हैं। मेरे एक अंग्रेज मित्र ने मुझे बताया कि इंग्लैंड में छोटे-से-छोटे ग
में भी वायुयान का शोर सुनाई देता है।

पूर्व को शांति का केन्द्र माना गया है और इसी कारण पाश्चात्य
की ओर झुक भी रहा है। पाश्चात्य देशों से शांति के भूखे लोगों का आ
आने का तांता ही लग गया है। किसी भी विदेशी की यह धारणा
भारतवर्ष शांति का केन्द्र है, पालम से ही दूर होना शुरू हो जाती है। मैं ज
अपने एक जर्मन मित्र को लेने पालम पहुँचा तो मुझे भी यह अनुभव हुआ
शोर की दृष्टि से रेलवे स्टेशन और हवाई-अड्डे में कोई भी अन्तर नहीं है। मे
मित्र को वहाँ के कस्टम का उन्हीं के शब्दों में 'नॉयजी केऑस' (Nois
Chaos) बड़ा अजब लगा। ख़ैर, जैसे-तैसे कस्टम से फ़ारिग़ होकर बाहर आ
तो टैक्सी वालों ने उनका घिराव किया। उन बेचारों पर टैक्सी ड्राइवर ऐ
टूटे जैसे मरे हुए जानवर पर गिद्ध टूटते हैं। यदि मैं उनके साथ न होता त
पता नहीं उनका क्या होता। शायद वह जर्मनी वापस ही चले जाते। जर्मन
भारत से कहीं अधिक औद्योगिक देश है पर उन्होंने ऐसा शोर वहाँ नहीं पाया
मुझे बड़ी शर्म आ रही थी कि भारत के बारे में वे जाने क्या-क्या सोचेंगे
क्योंकि अभी तो 'इब्तदाये इश्क़' ही हुआ था। ख़ैर, मैं बहुत सारे चक्रव्यूहों को
तोड़कर उन्हें घर लाने में सफल हुआ हालाँकि मेरे घर तक पहुँचते-पहुँचते
उनकी भारत-दर्शन की इच्छा आधी रह गई थी। जैसे ही घर पहुँचा मुहल्ले के
सारे बच्चे उनके पीछे लग लिये और लगे 'अंग्रेज-अंग्रेज' चिल्लाने क्योंकि वे तो

प्रत्येक गौरवर्ण वाले को अंग्रेज ही समझते हैं। जो उनके साथ हुआ जाने दीजिये, बस इतना समझ लीजिये कि बड़ी मुश्किल से तीन मास ही भारत रह सके जबकि उन्हें एक वर्ष रहना था।

आप चाहे जो भी हों, यदि आप भारत में रहते हैं तो शोर से भली-भाँति परिचित होंगे। यदि डॉक्टर हैं तो मरीजों के शोर से आप यदि खुद मरीज हो जायें तो आश्चर्य चकित होने की आवश्यकता नहीं। यदि इंजीनियर हैं तो आपको मशीनों और आदमी के शोर के मुकाबले का अनुभव होगा ही। यदि आप अध्यापक हैं तो ऐस्प्रो और एनासिन आप वैसे ही अपने-आप रखते होंगे जैसे हिप्पी अपने पास 'हशिश' रखते हैं। अध्यापक के लिए तो शोर विद्यालय में पहुँचने के साथ ही शुरू हो जाता है। उपस्थिति-अंकन के समय ऐसा लगता है जैसे आप कक्षा में न होकर सब्जीमण्डी में हैं।

लोग शांति के लिए मन्दिर जाते हैं। दुर्भाग्य से मेरे मकान के पास ही एक चर्च, एक मस्जिद व एक मन्दिर है। आप सोचते होंगे कि मैं बड़ा नास्तिक हूँ कि भगवान के तीन-तीन घर मेरे घर के पास हैं और इसे मैं दुर्भाग्य कहता हूँ। किन्तु यदि आप मेरे घर कभी भी तशरीफ लायें तो आप भी मेरे से सहानुभूति करेंगे। सवेरे चार बजे ही मुल्ला की अज़ान से नींद में जो शॉक लगता है उसे बस कुछ मत पूछिये—ऐसा लगता है किसी ने मुझे आसमान से नीचे पटक दिया हो। फिर शीघ्र ही मन्दिर में घंटे बजने शुरू हो जाते हैं। घंटे इतने जोर से व इतनी देर तक बजते हैं कि ऐसा लगता है या तो ईश्वर बहरा है या फिर घंटे सुनकर बहरा अवश्य हो गया है। और जब कहीं अखण्ड कीर्तन होता है तो—खुदा खैर करे—मुझे घर छोड़कर वन-भ्रमण करना पड़ता है। वैसे मैं मन्दिर नहीं जाता पर कभी-कभी जाता हूँ और प्रार्थना करता हूँ—भगवान् अखण्ड कीर्तन के प्रोग्राम को कैन्सिल कर दो या फिर कम-से-कम पोस्टपोन तो कर ही दो। चर्च की घंटियाँ भी सवेरे आठ बजे बजने लगती हैं।

मेरे एक मित्र हैं। मैं उन्हें बहुत भाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि वे कुछ बहरे हैं। वे अपने-आपको तब तक दुखी मानते थे जब तक उन्होंने 'हियरिंग एड' नहीं खरीदी थी। एक दिन 'हियरिंग एड' लगाकर वह मेरे घर आये तो मंदिर के घंटों की आवाज सुनकर उन्होंने तुरन्त 'हियरिंग एड' हटा ली और चैन से बैठ गये। अब वह 'हियरिंग एड' का कम ही प्रयोग करते हैं। परिवार नियोजन के शब्दों में उनके परिवार में 'घणो टाबर घणो दुख है' क्योंकि उनके पाँच लड़कियाँ तथा तीन लड़के हैं। किन्तु उनके इस बहरेपन ने उन्हें सुखी बना दिया। जब बच्चे लड़ते-झगड़ते हैं तो वे तुरत अपनी 'हियरिंग एड' हटा लेते हैं। इस प्रकार जब उनकी पत्नी उनके रात को देर से लौटने के कारण उन पर बरसती हैं तो भी उनका 'हियरिंग एड' उनकी जेब में होता है।

घोर बड़े का स्वयं के द्वारा मान्यता प्राप्त नसीहत देने का अधिकार सर्वमान्य दुर्ग की भांति दृढ़ प्रतीत होता है।

नसीहत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आचरण की दृष्टि से इसका नसीहत देनेवाले पर स्वयं पर कोई प्रभाव नहीं होता। नसीहत बनाई ही दूसरे के लिए गई है! यह तो नसीहत करनेवाले का उपकार ही समझिये कि वह जीवन के अच्छे-बुरे सभी अनुभव स्वयं करके दूसरे के हित के लिए केवल नसीहत छोड़े। हमारे दैनिक जीवन में इसके कई उदाहरण देखने को मिलेंगे जैसे नेता लोग सौम्य एवं देदीप्यमान मुखमण्डल से सभायें आयोजित करके मंच पर खड़े नित्य-प्रति ही नानाविध उपदेश झाड़कर जनता जनार्दन में राष्ट्रप्रेम, चरित्र के उत्थान व नवनिर्माण की लगन भरते देखे जा सकते हैं। लगता है नेताजी देश व जनता के गम में पुन-पुनकर सूखे हुए जा रहे है। करोड़ों के बैंक बैलेंस, मुफ्त की मिली आलीशान कोठियाँ, हजारों की बिजली फूंक देने की सुविधा, लायक-नालायक बेटे, भतीजों, नाते-रिश्तेदारों के भविष्य बनाने का सुरक्षित अधिकार आखिर उनके राष्ट्र-प्रेम, देश और जनता के लिए उनके हृदय में पलने दर्द तथा उनके उज्ज्वल चरित्र का प्रतीक ही तो है। बेचारे इसी दर्द को जनता में नसीहत के रूप में बांटते नहीं अघाते।

धर्मोपदेशक बेचारे अज्ञानी प्राणियों के माया-मोह का बन्धन काटने के लिए अपनी रसवन्ती से जगत के मिथ्या मायाजाल के प्रति अनासक्ति पैदा करते हैं। उनके मुखमण्डल पर व्याप्त तेज की आभा देखते ही बनती है जिसे देखकर क्षुद्र प्राणी धन्य हो नतमस्तक हो जाते हैं। केवल उन्हें अपनी रसवन्ती को मधुर तथा रसमय बनाने के लिए नित्य-प्रति सात्विक, उत्तम, पौष्टिक, दुग्ध-निर्मित अथवा शुद्ध देशी घी में बनी वस्तुएँ एवं फलाहार ही रास आता है। यदाकदा, लोग अथवा धर्मार्थ संचित द्रव्य ग्रहण करके तो वे निस्सन्देह उपकार ही करते हैं, जिससे संसार के प्राणियों के कल्याण में योग दे सकें और इस बात की उन्हें इतनी चिन्ता है कि सामूहिक रूप से स्त्री-पुरुषों के समूह को एकत्रित कर व व्यक्तिगत रूप से चेले-चेली बनाकर अपने उपदेश देने के कर्तव्य का निर्वाह करके पौष्टिक भोजन को हजम करते हैं।

बड़ी उम्रवालों को अपने से छोटों को दी जानेवाली नसीहत में वे सभी बातें शामिल होती हैं जिन्हें वे स्वयं अपने द्वारा करना तो अनुचित नहीं मानते अथवा इसे अपनी आदत का अंग बताकर मजबूरी मानते हैं किन्तु उसकी बुराई से भिज्ञ होने से दूसरों को, विशेष रूप से अपने से छोटों को उससे बचने के लिए प्रेरित अवश्य ही करेंगे। बीड़ी-सिगरेट-शराब का सेवन करनेवाला अथवा किन्हीं और दुर्व्यसनों में लिप्त व्यक्ति इन सबसे स्वयं का बचाव न करके भी दूसरों को, विशेष रूप से अपने से छोटे प्रियजनों को इससे बचाने के लिए अवश्य उपदेश

देगा। झूठ नहीं बोलने की नसीहत देनेवाला व्यक्ति स्वयं झूठ से परहेज नहीं करेगा। लोभ और लालच को बुराई मानकर बतानेवाला स्वयं इसका शिकार बना रहता है। नसीहत करनेवाले निस्वार्थ प्रतिभा व्यक्ति अपने स्वयं के आचरण को उसी प्रकार नजरअन्दाज करते हैं जैसे दीपक अपने नीचे अँधेरा ही रखता है। इसीलिए तो इनकी विशेषता का बखान गोस्वामी तुलसीदास ने भी तो यह कहकर किया है—'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'। नसीहत करने के इस संक्रमण से समाज का छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष, योगी-भोगी कोई अछूता नहीं बचा है। विद्वानों का तो यह आम धर्म है; फिर प्रचारक, लेखक, कवि, कहानीकार, अध्यापक, भाषणकर्ताओं का तो सहारा ही नसीहत है। नसीहत का सहारा लिये बिना इनकी रोजी-रोटी की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

नसीहत का एक विशेष मनोवैज्ञानिक पहलू और भी दिलचस्प है। वह है नसीहत करने के लिए अपनायी गई विभिन्न मुद्राएँ व भाव। शान्त सौम्यभाव, क्रोध, खीझ, अनुनय-विनय व मासूमियत भरा रूप अपनाकर नसीहत करना एक निश्चित एवं अमिट प्रभाव श्रोता पर छोड़ती है। नसीहत करनेवाला व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को सुननेवाले की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानता है। उसके चेहरे पर बड़प्पन की गरिमा एवं योग्यतासूचक भाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। यदि कोई धार्मिक उद्बोधन किया जा रहा हो तो वक्ता के मुखमण्डल पर सौम्यभाव दिखाई पड़ेगा। नेताओं के भाषण में आरोह-अवरोह के साथ-साथ आपको अनेक भाव उनके चेहरे पर देखने को मिल सकते हैं। अपने राजनैतिक विरोधियों की खबर लेते समय उनकी क्रोधपूर्ण भंगिमा, श्रोताओं की नासमझी पर तरस खाते हुए विरोधियों के व्यर्थ के झाँसे में आने के लिए दी गई खीझभरी मीठी फटकार, राजनैतिक घटनाओं को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते समय विश्वसनीयताजनक साधिकार विद्वत्ता की झलक निस्सन्देह एक ही रूप में बहुरूप होता है। अपनी बात को सत्य एवं विश्वसनीय बनाने के लिए सत्यवादी हरिश्चन्द्र का अभिनय तथा अपनी बात मनवाने के लिए की गई अनुनय चिरौरी के अवसर की कुटिलता के आवरण में छिपी मासूमियत की मुद्रा भी देखते ही बनती है।

बड़ी उम्र के लोगों के द्वारा अपने से छोटों को दी गई सीख में उनका सौहार्द व स्नेह का भाव छिपा होता है। उनके हृदय में एक आशंका बनी रहती है कि यदि वे अपने से छोटों को सावधान न करें तो सम्भवतः उन्हें सही दिशा मिल ही नहीं सकेगी। प्रायः बड़ी आयु के वयस्क लड़के-लड़कियों को उनके माता-पिता व अन्य बड़े-बूढ़ों के द्वारा दी गई नसीहत हास्यास्पद व अटपटी-सी भी प्रतीत होती है। अकेले यात्रा पर जाते समय बड़ी उम्र के लड़के-लड़कियों को सर्दी-गर्मी के मौसम का ध्यान रखने को कहना, उनकी लापरवाही का वर्णन करते

हुए अपनी कुशलक्षेम की सूचना समय पर देते रहने के लिए आग्रह करना, यात्रा के उद्देश्य की सफलता के लिए बता-बता करना आवश्यक होगा इस बात को कई बार कहकर भी उन्हें सन्तोष नहीं होता। लगता है नसीहत करनेवाले को दूसरे की बुद्धि पर तो भरोसा होता ही नहीं। कहीं जल्दी-जल्दी में यदि उन्हें कोई बात याद नहीं रही और बाद में उसका स्मरण आया तो उन्हें इस बात का बड़ा खेद होगा कि अमुक बात तो कहना वे भूल ही गये। अतः तुरन्त एक पत्र डालकर इसकी याद दिलाकर ही उन्हें सन्तोष होगा। चुनावों के अवसर पर हर प्रत्याशी व उसके समर्थक मतदाताओं को व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अनेक दलीलें देकर प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। राष्ट्र की भलाई केवल उनके ही द्वारा सम्भव हो सकती है अतः मतदाता चाहे उन्हें कितना ही अच्छी प्रकार से क्यों न जानता हो किन्तु प्रत्याशी को अथवा उसके प्रचारक को अपना कार्यक्रम, देश के कल्याण के लिए उनकी योजनाओं को क्रियान्वित करने के सभी तरीके व उनके चुने जाने की अनिवार्यता आदि-आदि पर पूर्ण प्रकाश डाले बिना सन्तोष नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मतदाता उनके बारे में, देश की समस्याओं व आवश्यकताओं के विषय में पूर्णतया अनभिज्ञ ही हो और यदि वे उसे भली प्रकार समझा नहीं सके तो वह स्वयं उचित-अनुचित का निर्णय कर पाने में सर्वथा असमर्थ रहेगा।

अतः नसीहत का बाजार हर जगह, हर परिस्थिति में गर्म मिलेगा, इसे देने में कोई कृपणता नहीं बरती जाती और अवसर प्राप्त होने पर इसका उपयोग से कोई नहीं चूकता।

सुननेवाला यदि दत्तचित्त होकर कहनेवाले की बात सुने, उसमें तर्क करके कोई बाधा उपस्थित न करे अथवा मौन रहकर उसके विचारों से प्रभावित होने का भाव प्रदर्शित करे तो उपदेशक को परम आत्म-सुख की प्राप्ति होती है। उसे लगता है कि वह श्रोता को अपने विचारों से अवगत कराकर उसका बहुत बड़ा कल्याण कर रहा है व श्रोता उसके भावों को ग्रहण कर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दे रहा है, अन्यथा इसकी विपरीत स्थिति में उसे श्रोता की बुद्धि पर तरस ही आता है।

अन्ततः यह बात शत-प्रतिशत सिद्ध होती है कि इन्सान को अपनी बुद्धि व दूसरे की दौलत हमेशा अधिक लगती है, इसीलिए नसीहत द्वारा अपनी विशिष्ट बुद्धि की धाक जमाकर अपनी भड़ास निकालने की मानव की इस सहज मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का न कहीं आदि है, न अन्त।

किक सामर्थ्य का मूल : परमार्थ

ा

र शर्मा

वासना, धर्म और आडम्बर, राजनीति और भ्रष्टाचार ही की तरह
र परमार्थ भी एक-दूसरे से इतने घुले-मिले रहते हैं कि नीर-क्षीर
जहंस को भी कठिन लगे। यह कह पाना अत्यन्त कठिन है कि किसी
परमार्थ का अंश कितना है, अथवा किसी परमार्थ में स्वार्थ का अंश
है।

सामान्य अर्थ में व्यक्तिगत हित में की जाने वाली चेष्टाओं को स्वार्थ
और किसी अन्य के हित में की जाने वाली चेष्टा परमार्थ के नाम से
जाती है। किन्तु विशिष्ट अर्थों में मनुष्य की आसुरी वृत्ति स्वार्थ नाम
दैवी वृत्ति परमार्थ नाम से जानी जाती है। स्वार्थ, अर्थात्
ी पाशविक चेष्टा। परमार्थ, अर्थात् मनुष्य की देव भूमिका। अपने लिए
पने मनचाहे व्यक्तियों के लिए हम सब कुछ करने को तत्पर रहते हैं।
से अधिक सुख-सुविधाएँ हम अपने लिए सुरक्षित कर लेना चाहते हैं।
मान चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए, नानाविध भोग-साधन चाहिए। हर स्थान,
ति, हर चेष्टा व्यक्तिगत सुरक्षा ही के लिए तो की जा रही है। झूठ,
भ्रष्टाचार, बेईमानी—क्या नहीं करते हम स्वार्थ के वशीभूत ?

स्वार्थ दुर्व्यसनों का जनक है, कुविचारों की उत्पत्ति करता है, विवेक
करके क्रोध और मोह के नागपाश में हमें बाँध देता है। फिर हमारी
टा मतलब देखने की हो जाती है—अर्थात् अमुक काम में हमें क्या लाभ
ला है। जिस काम में हमें कोई लाभ होने वाला नहीं, उसमें चाहे अन्य
को लाभ पहुँचता हो—करना हम उचित नहीं समझते।

दान-पुण्य होते हैं। तीर्थ-यात्राएँ की जाती हैं। बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ,
ल और स्कूल खोले जाते हैं। अखंड अन्न-क्षेत्र स्थापित होते हैं। बारह-
प्याऊएँ बैठाई जाती हैं। नानाविध मन्त्रोपासनाएँ की जाती हैं और सुपात्रों

का सत्कार किया जाता है, लेकिन क्या इन सबके पीछे परमार्थ ही एकमात्र भावना है ?

व्यक्ति अपने अन्तर्जगत में कई कृत्याकृत्यों से नैतिक शून्यता का अनुभव करने लगता है। और अपने दुष्कर्मों का परिहार करने की इच्छा से, भविष्य सुखमय बनाने की इच्छा से बिना निर्विघ्न जीवन-यापन की इच्छा से अथवा अन्य किसी भौतिक फलेच्छा से प्रभावित होकर सत्कृत्य की ओर अग्रसर होता है। कोई लोभ अथवा कोई-न-कोई भय आपको बड़े-से-बड़े सत्कृत्य के आधाररूप में बैठा मिलेगा।

फिर बड़े-बड़े परोपकारी भी जब कर्त्ता की हैसियत के अनुपात से आँके जाएँ तो वे किसी सामान्य छोटे परोपकार से भी बहुत छोटे प्रमाणित होते हैं।

स्वार्थसिद्धि के हेतु किया गया परमार्थ भी स्वार्थ ही की संज्ञा में आता है।

जितने क्रियाकलापों को हमने मोटे अर्थ में कर्तव्य नाम की संज्ञा दी है, वे सभी मूलरूप में प्रतिष्ठित स्वार्थ ही हैं। सरकारें बड़े-बड़े उद्योग-धंधे, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर या यों कह दें यह पूरा का पूरा संसार-चक्र स्वार्थ की कीली पर घूम रहा है। हमारे सम्बन्ध, अलगाव, शत्रुता और मैत्री—सब स्वार्थ पर केन्द्रित हैं। स्वार्थी की गुलाम मनोवृत्ति होती है। स्वार्थी का कपट-व्यवहार होता है। स्वार्थी जीवन के हर क्षेत्र में व्यभिचार को बढ़ावा देता है। शनैः-शनैः मनुष्य इतना स्वाभिमानहीन हो जाता है कि उसमें और दुतकारे जानेवाले कुत्ते में कोई अन्तर नहीं रहता। स्वार्थी कभी-कभी अन्य स्वार्थी का भी सहयोग नहीं कर पाता, जब तक सहयोग के अन्तर्गत अपना स्वार्थ निहित न हो। पिता-पुत्र में मुकदमे होने हैं। भाई-भाई लड़ मरते हैं। पति-पत्नी पृथक् हो जाते हैं। मनुष्य स्वार्थ ही के वशीभूत अपने स्नेह-पात्र की हत्या करने तक पर उतर आता है। सच ही, ऐसा लगता है जैसे स्वार्थरूपी भयानक दैत्य से बचने का कोई उपाय नहीं। हम स्वार्थ में सोते हैं, स्वार्थ में जागते हैं, स्वार्थ में सोचते हैं, स्वार्थ ही में क्रियाएँ करते हैं। हमारा तथाकथित परमार्थ भी किसी न किसी स्वार्थ ही से सम्बद्ध है।

है भी ऐसा ही। हम कहीं भी कभी भी स्वार्थ से अछूते नहीं रहते। रह भी नहीं सकते। क्योंकि स्वार्थ से अछूते रहकर परमार्थ के निकट आने के लिए पहली शर्त स्वयं को कष्ट देने की है, जो हमसे पूरी नहीं होती। हम स्वयं को कष्ट देकर किसी का भला करने को कभी तैयार नहीं होंगे। दूसरों की भलाई के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर देने की पवित्र भावना बड़े-बड़े संत पुरुषों में भी नहीं पायी जाती। लेकिन देवी-देवताओं को दुर्लभ यह महत् परमार्थ तत्त्व

की साफ-सुथरी झोंपड़ी में देखने को मिल सकेगा। एक उच्चस्तरीय कलाकार में देखा जा सकेगा। प्राणीमात्र का उपकार कर पाने की सहज वृत्ति ही परमार्थ की श्रेणी में आती है। परमार्थ किया न होकर स्वभाव है। प्रेम और करुणा इसके जनक हैं। उदारता इसकी सहायक है। अनासक्ति इसकी शक्ति है। धैर्य, राह और साधना गति है। निरन्तर सद्गुणों की वृद्धि इसका क्रमिक प्रतिफल और जीवन की पूर्णता तथा स्वरूपदर्शन का अखंड आनन्द इसका अनाकांक्षित महत् फल है। जिसका स्वभाव पारमार्थिक हो जाय, वह यदि ईश्वर नहीं तो ईश्वर से कुछ कम भी नहीं। इतिहास साक्षी है, जिन्होंने औरों के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया वे कोटि-कोटि जनता के भगवान हो गए। आज हम संसार के भिन्न क्षेत्रों में जिन विभिन्न व्यक्तियों की भगवान की तरह पूजा करते हैं वे महापुरुष क्या थे? एक ही उत्तर है—परमार्थी ईसा, बुद्ध, मोहम्मद, गांधी, महावीर अथवा गुरुनानक, भगवान राम अथवा श्रीकृष्ण—सभी की महत्ता, सभी की शक्ति, सभी का बड़प्पन इस सहज पारमार्थिक स्वभाव के अन्तर्गत छिपा है।

परमार्थ ईर्ष्या-द्वेष नष्ट करके दृष्टिकोण को पवित्र करने में सर्वाधिक सहायक होता है। दूसरों को सुखी देखकर स्वयं सुख अनुभव करने की अलौकिक सामर्थ्य जागती है। यह सुख शब्द परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। इसका मिठास चुपके-चुपके सहजता से कोई परोपकार करने पर ही मिल सकता है। अहिंसा, सहिष्णुता, सत्यता, सम्यता, विवेक और सच्चा जीवन-सुख परमार्थतत्व में इसी तरह समाया रहता है जैसे दूध में दही, मक्खन, मावा, मिसरी और अमृत का अंश। यदि जीवन की नाव को सफलता की ओर मोड़ना है तो उसे स्वार्थ की दिशा से परमार्थ की दिशा में घुमाना होगा। बस, यह घुमाव ही कठिन है। फिर तो स्वभाव की वायु नाव को सहारा देती है और साधना की पतवार इसे खेनी जाती है।

यह घुमाव है भी बहुत आसान। सदा अपने मार्ग में से किसी जरूरतमंद को देने की वृत्ति। अपनी इच्छा मारकर किसी ठिठुरते गरीब को एक प्याली चिया दी।

मन में इस इच्छा का वेग कि मेरे द्वारा किसी का बुरा न हो। एक ललक—क्या मैं आपके कुछ काम आ सकता हूँ?

जीवन-सौन्दर्य

□

काशीनाथ शर्मा

सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्—इन तीनों तथ्यों का पारस्परिक संयोग ही जीवन की
वास्तविक परिभाषा है। कुछ लोग जीवन की पूर्णता व सरसता को विभिन्न
आयामों से आँकते हैं, उनमें कुछ जीवन में आदर्श एवं व्यवहार के मेल को जीवन
की संज्ञा देते हैं जबकि कुछ उसे ही जीवन कहते हैं जो समयानुसार हो, सा
ही व्यक्तिगत जीवन में दैहिक आनन्द से ओत-प्रोत हो और इस प्रकार व्यक्ति
गत जीवन के सुख की प्राप्ति तक ही उनके जीवन की सफलता सुनिश्चित
मानते हैं।

जीवन वही है जहाँ सौन्दर्य हो। सौन्दर्य वहाँ ही सम्भव है जहाँ शुभ
साहस से वरण हो। शुभ भी वही है जहाँ प्रेम का स्वरूप हो। इसी प्रकार प्रे
एक ऐसा आधार है जो दूसरों के लिए अधिकाधिक करने व अपने लिए कम
कम भोगने हेतु तत्परता का भाव लिये हुए हो। सच्चाई तो यह है जीवन वि
प्रेम के अपूर्ण है, बिना सद्भावना व स्नेह के रिक्त है। जब जीवन में जहाँ रिक्त
का आभास हो, वहाँ उदारता व त्याग का आदर्श व्यवहार्य हो जाता है क्यों
यही प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट रूप से अंकुरित करता है।

बहुतों को यह शिकायत करते सुनता हूँ कि उन्हें कोई प्रेम नहीं कर
लेकिन मेरा यह अभिमत है कि आप प्रेम करना नहीं जानते हो, इसी प्रकार
लोग यह कहते हैं कि जीवन ने उन्हें निराश कर दिया है, यह सत्य नहीं है, जी
को उन्होंने निराश कर दिया है! कोलम्बस ने अपने जीवन को साहस, बलि
व त्याग का स्वरूप ही माना, और वह वही कर पाया जो कुछ चाहता था, अ
जीवन में सौन्दर्य की उपलब्धि तभी सुनिश्चित है जबकि मानव अपनी अन्तरा
से किसी शुभभाव को लेकर आगे बढ़े, और अपने आत्मविश्वास व अदम्य सा
के साथ इसकी पूर्ति-हेतु जीवन की समग्र शक्ति को उड़ेल दे। जीवन वही है
सदैव सक्रिय हो, जागरूक हो। निष्क्रियता मृत्यु का आह्वान करता है। ...

हंसने वाले दीर्घायु होते हैं

देवप्रकाश कौशिक

चिकित्सा-विज्ञान ने उन्नति अवश्य की है किन्तु उससे अधिक उन्नति की है मानसिक रोगों ने। आज आपको कम से कम नब्बे प्रतिशत लोग चिन्ता, क्रोध, क्षोभ आदि मानसिक विषमताओं से ग्रस्त मिलेंगे। चिन्ता, जैसाकि आप जानते हैं, चिता के समान है। अन्तर केवल इतना है कि चिता मुर्दे को जलाती है और चिन्ता जीवित मनुष्य को। आप भी क्रोध, चिन्ता या क्षोभ से अवश्य ग्रस्त होंगे। आइये, हम आपको एक फॉरमूला बतायें इन सबसे मुक्त होने का। फार्मूला है बहुत छोटा किन्तु है बड़ा कारगर। फॉर्मूले का नाम है—'हँसी'। जी हाँ, हँसी आपके क्रोध, चिन्ता तथा क्षोभ को ऐसे भगा देगी जैसे मुक्तिवाहिनी तथा भारतीय सेना के जवानों ने पाक सैनिकों को भगा दिया।

स्वास्थ्य के लिए हंसी उतनी ही आवश्यक है, जितनी जीवन के लिए वायु। अंग्रेजी की एक कहावत है—'हँसो और मोटे हो जाओ।' पाश्चात्य देशों के लोग हँसी के लिए बड़ी से बड़ी कीमत देते हैं। वहाँ हास्य व व्यंग्य-लेखकों को अन्य लेखकों से अधिक पारिश्रमिक मिलता है। 'पंच' पत्रिका जो कि इंग्लैण्ड से प्रकाशित होती है, संसार की सबसे प्रसिद्ध व्यंग्य-पत्रिका है। अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी हास्य तथा व्यंग्य का पर्याप्त मसाला रहता है। कारण, आज यदि पाश्चात्य देश के लोगों को हास्य तथा व्यंग्य की खुराक नहीं मिले तो आधे से अधिक लोग पागल हो जायें, क्योंकि मशीनी सभ्यता ने उनका जीवन यन्त्र के समान ही यांत्रिक तथा नीरस बना दिया है। अंग्रेजी कवि बायरन ने हँसी के महत्त्व को पहचाना है। उसने कहा है—"मैं प्रत्येक नश्वर चीज पर हँसता हूँ और इसलिए हँसता हूँ कि मैं रो न पड़ूँ।" बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य कहा है बायरन ने। यदि आप हँसते हैं तो आपको रोना आ ही नहीं सकता। हँसी आपको सुख देती है। जब आप हँसते हैं तो आपके साथ सब लोग हँसते हैं किन्तु जब आप रोते हैं तो आपका साथ कोई नहीं देता और आप अकेले रोते हैं। हँसी हँसाकर आप अपने दुखों को उसमें डुबो सकते हैं। हार्टमे कॉलरिज ने

कहा है—'हँसी हँसना भी एक कला है जिसमें कि आप अपने दिल की दुःख-भरी चीजों को दबा सकते हैं।' आपने जिन व्यक्तियों को हँसते देखा होगा उन्हें अवश्य ही स्वस्थ तथा सुखी पाया होगा। रोने वाले मनुष्य अधिकतर अस्वस्थ ही होते हैं। यदि कोई व्यक्ति दुःखी है और वह हँसता है तो उसका दुःख आधा भी नहीं रह जाता। मैंने अस्सी वर्ष के एक सिक्ख को देखा। वह लाठी के सहारे चलता और पन्द्रह-बीस कदम चलकर रुक जाता, क्योंकि इससे अधिक वह चल ही नहीं पाता। एक दिन वह मुझे रास्ते में मिला। जब मैंने उसकी यह स्थिति देखी तो मैं रुक गया। वह हँसते हुए बोला, "प्राजी, मैंनु चलदे-चलदे ब्रेक लग जान्दा है।" कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं हँसे बिना न रह सका। जो व्यक्ति ऐसी दशा में भी हँस सकता है वह क्यों नहीं सुखी रहेगा। बाद में मुझे मालूम हुआ कि उस सिक्ख की यह दशा पिछले दस वर्ष से है। यदि वह हँसता नहीं तो क्या वह अभी भी जीवित रह सकता?

हँसने वाले व्यक्ति दीर्घायु होते हैं। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ९५ वर्ष जीवित रहे। अलेक्जेण्डर पोप भी ८६ वर्ष जीवित रहे। दोनों ही हँसते थे और लोगों को हँसाते थे—व्यंग्य व हास्य लिखकर। शॉ से किसी महिला ने विवाह का प्रस्ताव यों रखा, "आप बुद्धिमान हैं और मैं सुन्दर। यदि हम विवाह कर लें तो हमारी सन्तान आप-जैसी बुद्धिमान तथा मेरी-जैसी सुन्दर होगी।" शॉ ने संक्षिप्त उत्तर दिया, "और यदि कहीं इसका उल्टा हो गया तो?" वास्तव में शॉ का अभिप्राय था कि यदि सन्तान उन-जैसी असुन्दर व उस महिला-जैसी मूर्ख हो, तो क्या होगा।

कुछ लोग प्रश्न कर सकते हैं—हँसें कैसे? हमारा उत्तर है कि अपने प्यारे भारतवर्ष में हँसी के स्रोतों की कमी नहीं है। हमारे देश में तो अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ ऐसा अभिनय करते हैं कि दुःखान्त फिल्म भी हँसी से भरपूर हो जाती है। यदि आप किसी फिल्म को अच्छा समझकर देखने जाते हैं और फिल्म बोर निकलती है तो अपनी स्वयं की मूर्खता पर ही हँसिये। यदि आप अपने चारों ओर नज़र दौड़ायें तो आपको हँसी के ढेर सारे स्रोत नज़र आयेंगे। यदि दुर्भाग्य से आपकी नज़र कमजोर है और आपको हँसी के स्रोत नज़र नहीं आते हैं तो आइये हमारे साथ। यह देखिये इस विद्यालय में एक सज्जन भाषण झाड़ रहे हैं समय की बचत पर, और भाषण पिछले दो घंटे से दे रहे हैं। पहले तीन कालांशों का वक्ता महोदय की कृपा से खून हो ही गया और भाषण अभी अधूरा ही है। क्या आपको हँसी नहीं आयी? यदि हँसी नहीं आयी तो आइये हम आपको बाजार ले चलें। वह देखिये एक कुरूप महिला आ रही है, एक बड़ा-सा जूड़ा लगाये। होंठों पर गहरी लिपस्टिक और गालों पर रूज लगा हुआ है। कपड़े इतने तंग कि क़दम छः इंच से अधिक नहीं पड़ सकते। उसकी अदा देखकर

यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि वह अपने-आपको किसी ब्यूटी क्वीन से कम नहीं समझ रही है। तभी एक गाय उसकी ओर दौड़ी आती है। महिला उस गाय से बचने के लिए दौड़ रही है पर तंग कपड़ों के कारण दौड़ा नहीं जा रहा है। यदि आप में थोड़ी-सी भी कल्पना-शक्ति है तो दृश्य की कल्पना कर आप हँसे बिना नहीं रह सकते।

प्राचीन काल में राजा-महाराजा अपने दरबार में विदूषक रखते थे। ये विदूषक प्रायः काफी बुद्धिमान होते थे। बीरबल अकबर का विदूषक था। शेक्सपियर के 'किंगलियर' में भी 'फूल' (Fool) नामक पात्र है जो कि एक बहुत बुद्धिमान विदूषक है। आप कहेंगे कि आजकल शासन में विदूषक नहीं है। मेरे विचार से तो भारतीय शासन में विदूषकों की भरमार है। अन्तर केवल इतना है कि ये विदूषक क्रिया-कलाप में प्राचीन विदूषकों से कुछ भिन्न कोटि के होते हैं। आपने समाचारपत्र में पढ़ा होगा कि एक मंत्री महोदय ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए आसपास के क्षेत्रों की बिजली तीन दिन तक बन्द रखी। विवाह में ऐसी रोशनी हुई कि पहले कभी भी नहीं हुई थी। सारे नियमों को तोड़कर दावत में हजारों आदमियों को खाना खिलाया गया। यह हँसी का विषय नहीं है तो क्या है ?

कुछ त्योहार हँसी के लिए मनाये जाते हैं—जैसे होली तथा फर्स्ट अप्रैल फूल। होली में तरह-तरह के स्वांग रचे जाते हैं जिन्हें देखकर हँसी का फव्वारा छूट पड़ता है। 'अप्रैल फूल' में आपको इस प्रकार बेवकूफ बनाया जाता है कि आपको अपनी मूर्खता पर स्वयं हँसी आती है। यदि आप क्रोध में हो तो हँसी आपकी रक्षा करती है। एक बार एक शरारती छात्र को अध्यापक ने किसी शरारत पर कक्षा से बाहर निकाल दिया। उस समय अध्यापक बहुत ही क्रोध में थे। छात्र ने जब क्षमा माँगी तो उनका क्रोध इतना बढ़ गया कि चेहरा तमतमाने लगा। तभी एक अन्य छात्र खड़ा होकर बोला, "सर, क्षमा कर दीजिये बेचारे को, आपका ही लड़का है, आपको पला-पलाया लड़का मिल रहा है।" उसका इतना कहना था कि सब छात्र हँस पड़े। अध्यापक महोदय भी हँसे बिना न रह सके। वास्तव में अध्यापक महोदय की कुछ दिनों बाद शादी होने वाली थी। उन्होंने मुसकराकर छात्र को क्षमा कर दिया। यदि उन्हें हँसी नहीं आती तो स्थिति गम्भीर तो थी ही, दुखान्त भी हो सकती थी।

कोई क्या कहेगा !

हेमप्रभा जोशी

प्रत्येक युग और समाज में इंसान की यह समस्या कि कोई क्या कहेगा उसकी
उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध करती आयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे
हमारी इच्छा, हमारी सुविधा और हमारी पसन्द का कोई महत्त्व ही नहीं है।
हमने कभी यह सोचने का कष्ट ही नहीं किया है कि हमारे मस्तिष्क में उठे
इसी एक प्रश्न ने हमें क्या-से-क्या बना दिया है। यदि कभी सोचा भी है तो
हमने अपने को अपंग ही पाया है। कोरा सोचना कोई महत्त्व नहीं रखता है।
सही दिशा में सोचकर उस ओर बढ़ना ही महत्त्व रखता है।

उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते, खाते-पीते—यों कहना गलत न
होगा कि हर कार्य करने से पूर्व, हमारे मस्तिष्क में यह प्रश्न उठता है कि
अमुक कार्य करते हुए किसी ने देख लिया तो कोई क्या कहेगा ?

मेरी एक सहेली कॉलेज में पढ़ती थी। वह मुझे एक दिन अपने कॉलेज
में ड्रामा दिखलाने ले गयी। कुर्सियों पर हम जा बैठे थे। कुछ देर बाद उसे
प्यास लगी। मेरे आग्रह पर भी वह उठी नहीं। पर जब मुझे प्यास लगी,
तो वह मेरे साथ एक पानी के कूलर तक आयी। मैंने पहले उससे पानी पीने
को कहा। वह बोली—'आप पीजिये।' कारण पूछा तो बोली—'हाथ से पानी
पीते हुए कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ?' मैं कुछ पलों तक तो उसे आश्चर्य-
दृष्टि से देखती रही। फिर पानी पीकर उसे कुछ देर तक पानी पीने का आग्रह
करती रही। पर वह न मानी। प्यासी ही लौट पड़ी। यह हाल तो तब था,
जब वह एक मध्यमवर्गीय परिवार की छत्रछाया तले जीवन बिता रही थी।
काश, यदि वह किसी रईस के घर पैदा हुई होती तो ?

जरा सोचिये जब हम इतने झूठे दिखावे को भी प्रोत्साहन देंगे तो हम
प्रगति कैसे करेंगे ? यही कारण है कि आज हम हमेशा रोते रहते हैं। कभी
इसी समस्या को रोते हैं तो कभी किसी समस्या को। सच पूछो तो हमने अपनी
...ों, आवश्यकताओं वगैरह को इतना अधिक बढ़ा लिया है कि उनकी पूर्ति

करना कठिन ही नहीं असम्भव लगता है। लेकिन फिर भी हम भेड़ की चाल से चले जा रहे हैं। हमारे तन-मन को यह बात घुन की तरह से खाए जा रही है कि दूसरे ऐसा पहनते हैं, खाते हैं और रहते हैं, इसलिए हम भी वैसा ही पहनें, खायें और रहें। नहीं तो कोई क्या कहेगा ! हम पलभर को यह नहीं सोचते कि इस तरह आंख मीचकर क्यों चलें ? दूसरों की नकल करने से लाभ क्या ? हमारी चादर कितनी लम्बी-चौड़ी है ? वगैरह। पर जब हमारी किसी बड़े झटके से कुछ देर के लिए आँखें खुलती हैं और हम अपने को मुसीबतों से घिरा पाते हैं तो हम दूसरों को बुरा कहने लगते हैं। पर यदि बारीकी से हम अपनी परेशानी, अपने दु:ख व अपने रोने का कारण जानें तो हम मुख्यरूप से स्वयं को ही दोषी पायेंगे। फिर भी हम यदि आँख मूंदकर ही चलेंगे तो हमारा क्या-से-क्या रूप होगा, यह भी देख लीजिये। पाँच-छः वर्ष पूर्व की बात है। हम एक बिगड़े रईस की हवेली के एक हिस्से में किरायेदार के रूप में रहते थे। बँटवारे में उस रईस के हाथ बहुत संपत्ति लगी थी। फिर क्या था ? रहने का आपका स्तर और ऊँचा उठ गया। देखते ही-देखते आपको पतंगबाजी के शौक ने आ घेरा। हजारों रुपया जब उस शौक की अग्नि में स्वाहा हो गया तब आप, उसकी पूर्ति हेतु कहिये या नए शौक के कारण कहिये, सट्टे के मैदान में आ कूदे। काफी सम्पत्ति जब आपने उसमें भी खो दी तब आपकी आँखें खुलीं। जैसे-तैसे बची-खुची सम्पत्ति से आपने मोटरों की मरम्मत का धन्धा शुरू किया। अब जो कार ठीक होने आती आप या आपका परिवार उसी में घूमता दिखाई देता। यहाँ तक देखा गया कि आप पान खाने भी जाते तो कार में जाते। कार से उतरते तो उसी रईसी अन्दाज से उतरते, जैसे उनकी खुद की कार हो। कहने का तात्पर्य यह कि आपका स्टेण्डर्ड तो घटने के बजाए बढ़ता ही रहा और कर्ज चढ़ता रहा। एक दिन वह भी आ गया जब आपके दरवाजे पर आकर क़र्जदार आपको आवाजें लगाने लगे। यह नौबत क्यों आयी ? गहराई से विचार किया जाए तो हम उन बिगड़े रईस व उनके परिवारवालों के मस्तिष्क में यही प्रश्न कि कोई क्या कहेगा विकराल रूप में उभरता पायेंगे।

ऐसे एक नहीं, अनेक इस रोग के रोगी हमारे इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। यदि गौर करें तो हो सकता है कि हम भी उन रोगियों में से एक हों।

यह कहना गलत न होगा कि इस कमर-तोड़ महँगाई, इस बढ़ती चोर-बाजारी के पीछे, हमारे मस्तिष्क में गलत रूप से उठ इस प्रश्न का कि कोई क्या कहेगा, गहरा हाथ है। तभी फैशनेबुल लोगों की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है। नए-नए फैशन, नई-नई चीजें सामने आ रही हैं। हम उनके पीछे भागे जा रहे हैं, भले ही हमारी खुशी पीछे छुटती जा रही है। दिखावटी

चीजें दिखावटी खुशी ही लाएँगी। यह जानकर भी हम कंटीले रास्तों की ओर दौड़े जा रहे हैं। उलझेंगे नहीं तो और क्या होगा ?

प्रगति की ओर अग्रसर होना बुरा नहीं, बुरा है बुराई की ओर बढ़ना। हर कदम उठाने से पहले, किसी की आलोचना की चिन्ता किये बिना यदि हम यह सोच लें कि हमें कहाँ जाना है, क्या करना है, सही साधनों में कैसे करना है, तो सच मानिये कि हमारे पास यह बिन बुलाए मेहमान की-सी बेचैनी फटकेगी नहीं। हमारे स्वागत के लिए प्रसन्नता, उन्नति और मानसिक शांति द्वार पर खड़ी मिलेगी।

जरा सोचिये, हमारा भी कोई अस्तित्व है। हमारी भी कोई पसन्द है। तो फिर क्यों न हम अपनी सही इच्छानुसार जियें ? इसका अर्थ यह नहीं कि हम समाज से अलग हो जायें, अपनी ढपली अपना राग ही अलापें; बल्कि इस समाज में ही ऐसे रहें, जिससे लोगों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत हो। भटके राही एक दिन कह उठें कि वास्तव में जीवन हो तो ऐसा हो। तब हम ही सुखी न होंगे, हमारा परिवार सुखी होगा, हमारा देश सुखी होगा।

विचार पर विचार

□

विश्वनाथ पाण्डेय 'प्रणव'

जन्तु जगत में मनुष्य इसलिए श्रेष्ठ माना जाता है कि वह अत्यन्त विचारशील प्राणी है। उसका मस्तिष्क निरन्तर किसी-न-किसी समस्या पर विचार करता रहता है। शायद इसीलिए मानव मस्तिष्क दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक और मूल्यवान वस्तु है। मनुष्य होने के नाते हम अनेक पहलुओं पर सोचते अथवा विचारते हैं। किन्तु, हमारे मस्तिष्क में कदाचित ही यह बात कौंधती है कि विचार कहते किसे हैं? विचार अपने आप में है क्या? शायद हमें इसकी आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

विचार जो अपने आप में समस्त चिन्तनशील जगत को समाविष्ट किये हुए है, विभिन्न प्रकार के भावों का संयोजन कर उन्हें तर्क-वितर्क द्वारा आगे बढ़ाते रहनेवाली एक शृंखला है, जिसका उत्पत्ति-स्थान है—मस्तिष्क। मस्तिष्क में ही विचार उठते हैं, सागर की ऊर्मियों की भाँति जो अनवरत चलते रहते हैं, तब तक जब तक कि मस्तिष्क पूर्ण विश्राम की स्थिति में नहीं आ जाता। जिस प्रकार जल-तरंगें जल-तल पर बनती हैं और बिना जल के तरंगों की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार विचार भी सर्वदा भावों की पृष्ठभूमि से उपजते हैं और बिना किसी भाव के विचार का अस्तित्व स्वीकार्य नहीं।

विचार कभी न नष्ट होनेवाली मूक भावाभिव्यक्ति की अवस्था है, जिसका मन्थन केवल मस्तिष्क में ही होता है। यह एक बार निर्मित होने के पश्चात् कभी समाप्त नहीं होता। यहाँ, शायद कतिपय व्यक्ति इस तर्क से असहमत हों, इसीलिए इसे अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है। कल्पना कीजिए, हम चार व्यक्ति साहित्य-चर्चा कर रहे हैं। हममें से प्रत्येक चर्चान्तर्गत इतना तल्लीन है कि उसे बाहरी दुनिया का भान ही नहीं रह गया है। साहित्य का रसास्वादन हमें चर्चा बढ़ाते रहने के लिए निरन्तर प्रेरित किये हुए है और हम उसमें पूर्णरूपेण विभोर हैं। इसी बीच कोई बाहरी व्यक्ति आकर हममें से किसी एक को जोर से पुकारता है और हमारी चर्चा का क्रम टूट जाता है। इस

समय सामान्य रूप से कोई भी कह सकता है—सारा मजा किरकिरा कर दिया, या सारा गुड़गोबर कर दिया। पर सोचिये, उसने आपके विचारों को क्या नष्ट किया है? केवल एक बात यही है, एक दूसरा आधार दिया है जिस पर आप दूसरी तरह से विचार करने लगे हैं। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि उसने चर्चा की पृष्ठभूमि बदलकर एक नयी पृष्ठभूमि प्रदान की है और हमारे पूर्व के विचार जहाँ थे, अपनी अवस्था में वहीं छूट गये हैं। और हम नवीन विषय या पृष्ठभूमि पर नवीन विचारों के साथ अग्रसर हो गये हैं। इस प्रकार विचार कभी न नष्ट होनेवाली, भावों को आगे बढ़ाती रहनेवाली एक तार्किक-अवस्था है। जिस प्रकार भाव कभी नष्ट न होकर विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होते रहते हैं, उसी प्रकार विचार भी कभी नष्ट न होकर बदलते रहते हैं।

विचार और चिन्तन—सामान्यावस्था में हम विचार व चिन्तन को एक ही अर्थ में स्वीकारते हैं। दोनों में पर्याप्त समानता होते हुए भी मूलरूप से अन्तर है। चिन्तन का आधार हमेशा किसी प्रकार की चिन्ता होती है। इसी प्रकार एक शब्द 'सोचना' भी है। यह भी विचार से साम्य रखने वाला शब्द है। किन्तु इसका भी आधार सामान्य भाव न होकर एक विशिष्ट भाव है—सोच। लेकिन जब 'चिन्ता' या 'सोच' से उद्भूत उसकी विभिन्न अवस्थाओं पर हम मनन करने लगते हैं, तो उसके कारणों पर प्रभाव डालनेवाले विभिन्न अन्य भाव जिन्हें हम सहभाव भी कह सकते हैं, निर्मित होने लगते हैं और इन भावों को बढ़ाते हुए जब हम सामान्य पृष्ठभूमि पर उतर आते हैं, तब हम चिन्तन करना या सोचना छोड़कर विचारने लगते हैं। कहने का तात्पर्य है कि चिन्तन करना या सोचना तभी तक माना जा सकता है, जब तक उसमें चिन्ता या सोच का भाव विद्यमान हो। जैसे ही मूल भाव (चिन्ता अथवा सोच) समाप्त हुए उक्त दोनों प्रक्रियाएँ विचारने की प्रक्रिया के अन्तर्गत आ जाती हैं। इस प्रकार विचारने की प्रक्रिया भाव-विशेष पर आधारित न होकर सामान्य भावों पर आधारित होती है, जबकि चिन्तन अथवा सोचने की प्रक्रिया भाव-विशेष पर आधारित रहती है।

विचार के स्वरूप—विचार की दो दिशाएँ हैं—धनात्मक व ऋणात्मक। धनात्मक दिशा वह होती है जिसमें से होकर गुज़रते समय विचारक को फूंक-फूंककर पैर रखने पड़ते हैं। इससे उद्भूत विचार सर्वगुणयुक्त, तर्कसम्मत एवं सर्वथा कल्याणकारी होते हैं। इसे मैं जन-हितकारी एवं सर्वांगपूर्ण विचारों की उत्तम दिशा की संज्ञा दूंगा। किन्तु इसके लिए मन की एकाग्रता, निर्लिप्तता एवं विवेक-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। दूसरी दिशा ठीक इसके विपरीत, अमंगलकारी है—विचारक के लिए भी और समाज के लिए भी। व्यक्ति के विचार जब देश-काल,

की आवश्यकताओं के अनुरूप न होकर उनसे भिन्न दृष्टिकोणवाले होते हैं, तब वे ऋणात्मक दिशा की ओर उन्मुख हुए विचार माने जाते हैं। चूँकि हमारी आवश्यकताएँ देश-काल की आवश्यकताओं से भिन्न न होकर उन्हीं का अंश हैं, इसलिए देश-काल की आवश्यकताओं के प्रतिकूल विचार स्वयं हमारे प्रतिकूल प्रभाव डालनेवाले विचार कहे जायेंगे, भले ही इस प्रकार के विचारक को यह बात युक्तियुक्त न प्रतीत हो। यहीं यह विचारणीय भी हो जाता है कि ऐसे विचारों का अस्तित्व ही क्या जिनका हमें परिणाम तक न मिले, जो हमारे अनुकूल न हों! आप कहेंगे—क्या ऐसे भी विचार होते हैं? मैं स्पष्ट शब्दों में कहूँगा—हाँ, स्वार्थपूर्ति के लिए किये गए व्यापार, उन्हें साकार बनाने के लिए अपनाये जानेवाले विविध साधन और इन सबको सुसचालित करने के लिए इन पर विविध प्रकार से किये गये विचार—यह सब क्या है? ऋणात्मक दिशा की ओर उन्मुख विचार ही तो हैं। इन दो दिशाओं के आधार पर ही हम विचार के दो स्वरूप निर्धारित कर सकते हैं—(१) सपुष्ट, सुप्रिय एवं जनहितकारी विचार, (२) अपुष्ट, अप्रिय एवं अकल्याणकारी विचार। सपुष्ट विचारों का अर्थ है—सर्वप्रकारेण पुष्ट अर्थात् जिनकी पुष्टि हो सके। किन्तु, विचारों की पुष्टि तभी हो सकती है जब वे पूर्णरूपेण शोधित व परिमार्जित हों और उनमें तर्क के लिए स्थान न रहने पाये। इस प्रकार के विचारों का प्रादुर्भाव केवल परिपक्व मस्तिष्क से ही सम्भव है। अवस्था के साथ मस्तिष्क भी परिपक्व होता है, यह मान्यता काफी प्रचलित है। किन्तु, इसमें कुछ सन्देह रह जाता है। केवल अवस्था के बढ़ते रहने से मस्तिष्क की परिपक्वता सभव नहीं है। मनोविज्ञान के अनुसार सभी मस्तिष्क एक-जैसे नहीं हो सकते। उनका भी श्रेणी-विभाजन किया है। मस्तिष्क की परिपक्वता का बौद्धिक क्षमता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बौद्धिक स्तर की दृष्टि से जो व्यक्ति जितना सक्षम होगा, उसका मस्तिष्क उतना ही परिपक्व माना जायेगा। प्राय: हम बौद्धिक स्तर की श्रेष्ठता का अनुमान उच्च शिक्षा से लगाते हैं, किन्तु यह हमारी बहुत बड़ी भूल है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उत्तम होगा कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने का बुद्धिमान बनने से दूर का सम्बन्ध है, जैसा कि हमें अपने सामाजिक जीवन में दृष्टिगोचर होता रहता है।

सपुष्ट विचार व्यक्ति को प्रिय लगें, यह आवश्यक नहीं। इनमें तर्क का कोई स्थान नहीं होता, किन्तु कई बार कटु-सत्य से अभिभूत होने के कारण ये अप्रिय लगने लगते हैं। विचार सबको प्रिय लगें, इसके लिए आवश्यक है कि उनमें जनहित के भाव भी समाहित हों। सर्वप्रकारेण पुष्ट एवं सर्वहितकारी विचार ही सुप्रिय होते हैं, समाज का सही मार्गदर्शन कर सकते हैं, अन्यथा इसका विपर्यय होता है।

मस्तिष्क की अपरिपक्वता के फलस्वरूप जो विचार बनते हैं, वे सर्वथा खोखले होते हैं, अर्थात् उनकी पुष्टि नहीं हो पाती, उनमें तर्क के लिए पर्याप्त स्थान रहता है, त्रुटियों का आधिक्य तो होता ही है। परिणामतः ऐसे विचार अकल्याणकारी सिद्ध होते हैं। इसीलिए ऐसे विचार अपुष्ट, अप्रिय एवं अकल्याणकारी विचार कहलाते हैं।

मेरे मतानुसार संपुष्ट विचारों के लिए यह आवश्यक है कि जिस विषय पर विचार किया जा रहा है, उसके विभिन्न पहलुओं पर तर्क किया जाय; अच्छाइयों एवं बुराइयों का लेखा-जोखा रखते हुए अत्यन्त सतर्कता के साथ केवल उन्हीं गुणों को विचारों में पिरोया जाय जो सर्वकल्याणकारी एवं तर्क द्वारा अकाट्य हों, अर्थात् सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् जैसे शाश्वत मूल्यों से अभिभूत हों।

सड़क की आर्त्त पुकार

□

बसंतीलाल महात्मा

संध्या का सुहावना समय था। प्रतिदिन के संध्या-भ्रमण के लिए जाने का विचार कर रहा था कि आज का यह संध्या-भ्रमण किस दिशा में हो? सोचते-सोचते विचार आया कि आज उस सड़क की ओर चला जाय जिसका अभी-अभी निर्माण हुआ है और जो एक सुन्दर सरोवर के किनारे-किनारे होकर चली गई है। अतः उसी नव-निर्मित सड़क की ओर प्रस्थान किया। जब उस सड़क पर पहुँचा तो उसकी स्वच्छता एवं सुन्दरता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वस्तुतः सड़क बहुत अच्छी और समतल रूप में बनाई गई थी। ऐसी सड़क पर चलने में कहीं भी ऊँचा-नीचा नहीं था। यदि कोई कार या बस उस सड़क पर होकर निकले तो कार या बस में बैठनेवाली सवारियों के पेट का पानी तक न हिले। इस प्रकार मैं उस नव-निर्मित सड़क की मन ही मन प्रशंसा कर रहा था। साथ ही उसके भाग्य की सराहना भी कर रहा था कि इस सड़क को हजारों-लाखों यात्रियों को अपने-अपने गन्तव्य स्थानों पर सुविधापूर्वक और सुरक्षित पहुँचाने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इतने में मेरे कानों में एक धीमी परन्तु आर्त्त पुकार सुनाई देने लगी। मैंने आश्चर्यवश अपने चारों ओर देखा पर कोई भी नहीं दिखायी दिया। तब उस आर्त्त पुकार ने ही अपना रहस्य प्रकट करते हुए स्पष्ट किया, "हे पथिक! यह जो आर्त्त पुकार तुम्हारे कानों में आ रही है, वह और किसी की नहीं अपितु मुझ नव-निर्मित सड़क की ही है जो तुम्हें अपनी दुःख की बात सुनाने को आतुर हो रही है।" यह सुनकर मैं और भी अधिक विस्मय में पड़ गया और सोचने लगा कि यह नवीन सड़क इतनी दुःखी क्यों है? इसे कौन-सा दुःख व्यापा है? मेरे इन प्रश्नों के उत्तर में सड़क निम्नलिखित ढंग से बोली—

"हे यात्री! जिस दृष्टिकोण से तुम मेरी प्रशंसा कर रहे हो और साथ ही मेरे भाग्य की सराहना कर रहे हो वह उचित ही है। परन्तु मैं जिस दृष्टिकोण से इतनी दुःखी होकर जो आर्त्त पुकार कर रही हूँ, वह भी पूर्णरूप से उचित ही है क्योंकि इस विश्व में पूर्ण सत्य किसी पर भी प्रकट नहीं होता है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक वस्तु के प्रति अपनी-अपनी रुचि एवं भावना के अनुरूप अपने-अपने विचार अभिव्यक्त करता है। अतः इन अभिव्यक्तियों में भिन्नताओं का होना पूर्णरूप से स्वाभाविक है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति की अभिव्यक्ति अपनी-अपनी जगह उचित ही जान पड़ती है। पर मैं इतनी दुःखी अपने निजी दृष्टिकोण से ही हूँ। जहाँ आप मेरे भाग्य की सराहना कर रहे हैं वहाँ मैं अपने निर्माण की प्रक्रिया को देखकर धाड़-धाड़ आँसू रो रही हूँ। आप मेरे दोनों ओर गहरे-गहरे गड्ढों की पंक्तियाँ नहीं देख रहे हैं? और ये गहरे गहरे गड्ढे ही मेरे दुःख के वास्तविक कारण हैं। मैं इसे अपने दुर्भाग्य के अतिरिक्त और समझ ही क्या सकती हूँ कि मेरे निर्माण में मेरे दोनों ओर की भूमि को खोद-खोदकर मुझे समतल और ऊँचा बनाया गया है। अब आप ही गहराई से चिंतन और मनन कीजिये कि इस प्रकार के शोषण से निर्मित मैं अपने भाग्य की सराहना करूँ या कोसूँ? वस्तुतः ऊँचा बनने की प्रक्रिया में इस प्रकार का शोषण होना अवश्यंभावी है। अब आप कृपया, अपने समाज की ओर भी दृष्टिपात कीजिये। एक ग्राम की सौ या अस्सी झोंपड़ियों के मध्य दो या चार पक्के और ऊँचे मकान बने हैं तो यह निश्चित है कि उन पक्के और ऊँचे मकानों के अस्तित्व में उन सौ या अस्सी झोंपड़ियों का शोषण ही उभरा हुआ है। इसी प्रकार एक कस्बे में सौ-दो सौ पक्के और ऊँचे मकान हैं तो उन पक्के और ऊँचे मकानों के निर्माण में उस कस्बे की झोंपड़ियों का और साथ ही पड़ोसी गाँवों के पक्के मकानों का शोषण सहयोगी है। इसी प्रकार शहर की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं को इतना ऊँचा बनाने में उस शहर की समस्त झोंपड़ियों और पड़ोसी कस्बों के समस्त पक्के मकानों का शोषण साकार रूप ग्रहण कर चुका है। यह शोषण की एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है। समाज में जो सबसे अधिक धनी हैं वे ही सबसे अधिक शोषणकर्ता भी हैं। उन लोगों का धनी बनना या ऊँचा उठना मेरे ही समान शोषण पर निर्भर है। जिस प्रकार मेरे निर्माण में आस-पास की भूमि का शोषण किया गया उसी प्रकार समाज में जो भी व्यक्ति धनी बनता है वह निश्चित रूप से अपने पास-पड़ोस के कई व्यक्तियों का शोषण करके बनता है।"

अपनी आर्त्त पुकार अभिव्यक्त करके सड़क तो यकायक मौन हो गई, पर वह मुझे शोषण की प्रक्रिया का एक ऐसा रहस्य प्रकट कर गई जिसने इस दिशा मे विशिष्ट रूप से सोचने एवं मनन करने की प्रेरणा दी। इसी चिन्तन और मनन मे उन समस्त दार्शनिकों, संतों व कवियों के वे स्वर गुंजार करने लगे जिनमें उन्होंने एक स्वर से यह अभिमत व्यक्त किया था कि धनी बनने की आकांक्षा करना एक महान पाप है क्योंकि इस आकांक्षा मे यह भावना निश्चित रूप से सन्निहित है कि अनेक व्यक्ति निर्धन रहें और उनके शोषण से अपने को

धनी बनाया जाय। इसीलिए सन्त कबीर ने स्पष्ट रूप से उद्घोषणा की—

आधी और रूखी भली, पूरी सो संताप।
जो चाहेगा चूपड़ी, बहुत करेगा पाप॥

चुपड़ी रोटी अर्थात् मेवा-मिष्ठान्न जैसे पदार्थों का सेवन करने के लिए बहुत पाप अर्थात् निर्धनों का शोषण करना पड़ेगा। इसी संदर्भ में तथागत बुद्ध के जीवन का एक पावन प्रसंग स्वयंमेव स्मृति-पटल पर अंकित हो गया जो निम्नलिखित है—

एक बार बुद्ध अपने उपदेशों का प्रचार करते-करते किसी राजा की राजधानी में पहुँचे। वहाँ के एक बढ़ई के घर पर ठहरे। उन्होंने उस बढ़ई के यहाँ रूखा-सूखा भोजन बड़े चाव और प्रेम से किया। प्रातःकाल ज्योंही वहाँ के राजा को बुद्ध के आगमन और बढ़ई के घर ठहरने की सूचना मिली, वह स्वयं बढ़ई के घर जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने महात्मा बुद्ध से अपने राजमहल में आकर भोजन करने का आग्रह किया। बुद्ध ने राजा को बार-बार मना किया कि हे राजन्! मैं आपके यहाँ भोजन करने में असमर्थ हूँ। पर ज्यों-ज्यों बुद्ध मना करने लगे, राजा का आग्रह बढ़ने लगा। अन्त में बुद्ध ने राजा के मन को रखने के लिए प्रातःकाल का भोजन उसके यहाँ करना स्वीकार कर लिया। जब बुद्ध राजमहल में पधारे तब हजारों दर्शक उनके साथ थे। राजा ने बुद्ध को आदरपूर्वक एक उच्चासन पर बिठाया और उनके सामने स्वर्ण-थाल में नाना प्रकार के व्यंजनादि परोसकर रख दिये। बुद्ध ने उस थाल में से एक लड्डू उठाया और उसको मुट्ठी में लेकर सभी दर्शकों के सामने दबाया। तमाम नगर-निवासियों को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि लड्डू में से रक्त की बूँदें टपक रही हैं। तत्पश्चात् बुद्ध ने बताया कि मैं आपके यहाँ भोजन करने के लिए इसीलिए मना कर रहा था कि आपके भोजन में आपकी सम्पूर्ण जनता का शोषण निहित है और वही शोषण इस लड्डू में से रक्त की बूंदों के रूप में टपक रहा है। मैं किसानों, मजदूरों और कारीगरों के यहाँ भोजन इसलिए करता हूँ कि उनका रूखा-सूखा भोजन शुद्ध रूप में उनके परिश्रम का है और शोषण-रहित है।

यही कारण था कि ईसामसीह ने भी उपदेशों में निर्भीकता से घोषणा की—

"सुई की नोंक में से ऊँट का निकलना संभव हो सकता है; पर धनी का स्वर्ग में प्रवेश पाना नितांत असंभव है।"

ईसा ने धनी के स्वर्ग में प्रवेश पाने को नितांत असंभव क्यों कहा? स्पष्ट है कि धनी अपने धनोपार्जन में निर्धनों का जो शोषण करता है और तत्पश्चात् धन का नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में जो उपभोग करता है उससे वह स्वर्ग का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता है।

[illegible] ने भी इस्लाम धर्म के अनुयायियों को इस शोषण-कारी [illegible] से बचाने के लिए दो सुझाव प्रस्तुत किये। [illegible] यह कि वे [illegible] [illegible] (इस्लाम) [illegible] [illegible] (जकात) देते रहें। दूसरा [illegible] को [illegible] पर [illegible] स्वीकार न करें।

महावीर स्वामी ने प्रत्येक जैन गृहस्थ को पांच व्रत का पालन अनिवार्य बतलाया है। ये व्रत हैं - (१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अचौर्य, (चोरी न करना), (४) ब्रह्मचर्य और (५) अपरिग्रह। अपरिग्रह का अर्थ है आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना। स्वयं महावीर ने गृह त्यागकर अपने अनुयायियों के सामने मर्यादापूर्ण आदर्श रखा। महावीर स्वामी का अपरिग्रह का सिद्धांत ही आज के युग का समाजवाद या साम्यवाद है। यदि अपरिग्रह के सिद्धांत को सम्पूर्ण जैन समाज व्यावहारिक रूप देता तो भारत में समाजवाद बहुत पहले ही आ जाता।

राष्ट्रपिता गांधी जी ने भी अपरिग्रह के सिद्धांत पर बल दिया। उन्होंने आजीवन धोती एवं कुर्ते पर ही निर्वाह किया। वह विलासी जीवन से घृणा करते थे। वे जीवन में 'सादा जीवन, उच्च विचार' के समर्थक थे। उन्होंने शोषण-वृत्ति की निन्दा करते हुए स्पष्ट कहा था—

"उस व्यक्ति को खाने का कोई अधिकार नहीं है जो स्वयं कोई उत्पादक श्रम नहीं करता है।"

यही कारण था कि उन्होंने बुनियादी शिक्षा में उद्योग एवं स्वावलंबन पर अत्यधिक ज़ोर दिया।

भारतवर्ष में महावीर, बुद्ध, कबीर एवं महात्मा गांधी जैसे समाजवादी आदर्श पुरुषों के उपदेशों का जनता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत विडम्बना यह रही कि उपर्युक्त आदर्श पुरुष अपने जीवन में गरीबों, दलितों एवं अछूतों के रहे परन्तु मरणोपरान्त धनिकों ने उनको अपना बनाकर उनकी अस्थियों, दाँतों अथवा भस्मी पर बड़े-बड़े मंदिर, स्तूप, समाधियाँ एवं स्मारक निर्माण कर मानो उनके आदर्श सिद्धान्तों को गहरा गाड़ दिया।

वर्तमान समय में इस सड़क की आर्त पुकार को सुना है श्रीमती इंदिरा गांधी ने। वस्तुतः एक नारी ही दूसरी नारी की पीड़ा को समझ सकती है। श्रीमती गांधी भारत से गरीबी हटाने को और शोषण की इस प्रक्रिया को बन्द करने को कृत संकल्प हैं। इस दिशा में निम्नलिखित ठोस कदम भी उठाए जा चुके हैं—

१. बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका है ताकि धनिकों का बैंकों से वर्चस्व समाप्त हो और सर्वहारा वर्ग के लोग भी बैंकों से लाभ उठा सकें।

२. राजाओं और महाराजाओं को मिलनेवाली पेंशन या प्रिवी-पर्स

समाप्त कर दी गई है जिससे यह करोड़ों रुपये की राशि जन-साधारण के हितार्थ खर्च की जा सके।

३. मृत्यु-कर लगाकर बड़े-बड़े पूंजीपतियों द्वारा शोषित धन को पुनः समाज के हित में लगाया जा सके।

४. शहरी-सम्पत्ति का निर्धारण किया जा रहा है ताकि धनिकों की लोभ की सीमा स्थिर की जा सके और उनमें संतोष-वृत्ति पैदा की जा सके।

५. देहातों में जोत की सीमा निश्चित की जा चुकी है। इस प्रकार बड़े-बड़े जमीदारों और जागीरदारों से जो भूमि प्राप्त होगी वह भूमिहीनों में वितरित कर दी जाएगी।

इस प्रकार पंचसूत्री योजनाओं द्वारा 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम को कार्यान्वित किया जा रहा है और शोषण की प्रक्रिया की सीमा को बहुत कम किया जा रहा है। यही नहीं, वर्तमान समय में अनाजों की अत्यधिक मूल्य-वृद्धि के कारण सरकार अनाज के थोक व्यापार को भी अपने हाथ में लेने की योजना पर काम कर रही है। इन सब योजनाओं में सरकार को अच्छी सफलता प्राप्त हो और समाज में हजारों वर्षों से चली आ रही शोषण की प्रक्रिया समाप्त हो, यही हार्दिक इच्छा है।

अंत में 'सड़क की आर्त्त पुकार' को देश के धनिकों को भी सुनाना है ताकि वे भी सड़क की भांति शोषण से विचलित होकर स्वयं प्रायश्चित करें और शोषण की प्रक्रिया को सीमित कर दें। अन्यथा सर्वहारा वर्ग की क्रांति की आंधी में, जिसे श्रीमती इंदिरा गांधी लाने का पूर्ण प्रयास कर रही हैं, वे कहीं के नहीं रहेंगे। 'सड़क की आर्त्त पुकार' की यही सामयिक चेतावनी है जिसे देश के धनिक वर्ग सुनेंगे और संतोष को जीवन में अपनायेंगे क्योंकि महाकवि तुलसी ने संतोष को ही सबसे बड़ा धन माना है—

गो धन, गज धन, बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान॥

गढ़वाली लोकगीतों में सैन्य-भावना

राधाकृष्ण शास्त्री

रविवार, २८ जून, सन् १६४२ को जब हम गंगोत्तरी से श्री केदारनाथ के दर्शन करने जा रहे थे तो गत्तू चट्टी से करीब डेढ़ मील गोपाल चट्टी के पास हरे भरे खेतों में इधर अपने काम में तपस्वियों की-सी धुन लिए निश्चल भाव से पुरुष मग्न थे, उधर स्त्रियाँ हाथ से काम करती जाती थीं तथा स्वरीले कंठों से राष्ट्र-सेवा-सैन्य-भावना गढ़वाली लोक-गीत गा रही थीं।

ओजस्वी कर्ण-प्रिय गीत सुनने हम ठहर गये। भाँति-भाँति के विचार आये, वे वर्णनातीत हैं। सच है, जिनमें जीवन हो, जीवन का उत्साह और ताजगी से भरी भरपूर राष्ट्र-भावना हो, वे ही निःस्पृह राष्ट्र-सेवी हो सकते हैं। क्यों न हो, नगराज हिमालय, भारत का भव्य ऊँचा मस्तक, पुण्य-सलिला यमुना-गंगा का उद्‌गम-स्थल, श्री केदारनाथ-बद्रीनाथ का परमधाम—इसी में स्थित धर्म-प्राण भारत का सौष्ठव बढ़ानेवाला प्यारा गढ़वाल प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विशिष्टताएँ रखनेवाला यह उत्तराखंड अपने लोक-गीतों में भी अपनी गौरव-गरिमा को बढ़ाये हुए है। एक ओर पर्वतीय जन-जीवन जितना संघर्षमय और कष्टदायक है, दूसरी ओर उतना ही देश-प्रेम और यथार्थ राष्ट्रीय भावना का पुंज-रूप है।

इतिहास कहता है कि गढ़वाली सैनिक ने समय-समय पर संसार के सम्मुख अपने शौर्य और सामर्थ्य के अपूर्व दृष्टान्त रखे हैं। गढ़वाल प्रदेश का प्रत्येक व्यक्ति अपने को राष्ट्र का कर्तव्यनिष्ठ सैनिक समझता है। हरी-भरी पर्वत वनावलियाँ, गहरी सर्पाकार घाटियाँ हर समय राष्ट्र-भक्ति, भावनापूर्ण लोक-गीतों से गुंजित रहती हैं। एक ओर पर्वतीय वन-चरियाँ बाँज, बथौड़ और बुरांश की घनी छायाओं में स्वच्छन्द-चित्त काम करती हुई गुनगुनाती रहती हैं तो दूसरी ओर उनका सैनिक पति बर्फीले उत्तुंग शृंगों पर राष्ट्र के प्रति सीमा पर सजग प्रहरी रहता है।

यहाँ मैं गढ़वाली औरतों से सुने सैन्य भावना भरे गीत उद्धृत करता हूँ—

निशांदा मार जू रण माँ,
निशांदो वार स्वीवो खाली।
इना छन शुर रण बांका,
बहादुर वीर गढ़वाली॥

लड़ाई के मैदान में गया हुआ गढ़वाली सैनिक दुश्मन को पीठ नहीं दिखाता क्योंकि उसका एक भी वार खाली नहीं जाता। गढ़वाली वीर! इतने रणबाँकुरे होते हैं कि जिनका एक भी निशाना कभी नहीं चूकता।

उक्त उत्तेजित गीत को सुन मैं आश्चर्यचकित हो गया। तब हमारे गढ़वाली कुली ने कहा "बाबूजी! सुनो। यहाँ की स्त्रियाँ ही नहीं, राष्ट्रीय आपत्ति के समय तो यहाँ का सैनिक अपने परिवार, यहाँ तक कि अपने को भी भूल जाता है। उस समय राष्ट्र-रक्षा को ही वह अपना जीवन मानता है, केवल इसी को अपना कर्तव्य और धर्म समझता है। जैसे कि एक सैनिक पति अपनी स्त्री से कहता है—

धर्म मेरो आज ई चा
कि छौं देश को सिपाही, मेरी मोहनी।

प्रिय मोहनी! आज मेरा सबसे बड़ा धर्म और कर्म यही है कि मैं लड़ाई के मैदान में जाऊँ, क्योंकि मैं राष्ट्र का सिपाही हूँ।"

मेरे सहगामी प० उमाशंकर जी ने कहा कि गढ़वाली लोकगीतों में सैनिक को लेकर पर्याप्त सामग्री मिलती है। अतः मैंने भी केदारनाथ-यात्रा में जो गीत संग्रह किये उन्हें प्रस्तुत करता हूँ।

आपत्तिकाल में गढ़वाली आपसी भेद-भाव को भुलाकर सर्वप्रथम राष्ट्र की रक्षा को प्राथमिकता देते हैं। जैसे—

हम तै राष्ट्र पैली चा,
हमारी ज्वान पैयर छन।
जबरि भी आँद क्वी संकट,
तरुण बलिदान एथर छन।

—हमें राष्ट्र प्राणों से प्यारा है, हमारी जवानियाँ राष्ट्र के पीछे हैं। देश पर जब कोई भी संकट आता है तो राष्ट्र-रक्षा के लिए गढ़वाली युवक आगे आकर बलिदान के लिए होड़ लगाते हैं।

परीक्षा वह काल है जिसमें बड़े-बड़े धीर, वीर, धुरंधर घबरा जाते हैं—

स्वर्णकार ने स्वर्ण को दियो अग्नि में डार,
काँप उठ्यो पानी भयो, देख परीक्षा काल।

इतना सुनते ही तो मानो प्रगाढ़ निद्रा में सुप्त सिंहनी को शब्दों की छिटपुट आवाज ने जगा दिया हो, वह यकायक माया, ममता और प्रेम की कच्ची डोर को तोड़कर अपने कर्तव्य और देश-भक्ति की अटूट शिला बन, अपने धर्म को समझ गई कि गढ़ प्रदेश की स्त्रियाँ हमेशा ही ऐसा त्याग करती आयी हैं। उसके (मोहनी ने) यकायक अपने मुखमंडल पर विजयोल्लास की उमंग लिये हँसती-हँसती अपनी अँगुली से रक्त की बूँद निकाल उत्साह बढ़ाने हेतु यह कहते हुए झट विजय-तिलक लगा दिया—

जावा मेरा वीर सिपाही
लगी खून की पिठाई—मेरा सिपै जी।
मेरो आज धर्म ई च
छवा देश का सिपाही—मेरा सिपै जी।।

—मेरे रणधीर पति ! मैं आपको विजय-तिलक लगाती हूँ। मोह और मायाजाल से निकलकर मुझे अपना धर्म साफ दिखाई देता है अतः मैं अपने प्राण-प्रिय धन को मातृभूमि के चरणों में अर्पण करती हूँ।

उसे भान हो आया कि उसकी प्रतिष्ठा की लालिमा उस वक्त और भी अधिक चमकेगी जब उसका पति विजयश्री लेकर वापस लौटेगा। साथ ही यह भी खयाल आया, ऐसा न हो जाय कि उसका प्यारा धन शत्रु से भिड़ने वक्त, सहज सुलभ सांसारिक सुखों की बुरी वासना को मन में धर, मोह-ममता के कारण विचलित हो जाय, इसलिए पुनः सजग होकर कहने लगी—

बिल्ला म कं की मन भंग लावा
धीरज धैरो लड़ै म जावा।
करतब अपणों ऐ की दिखावा
सबद सुमन सी नाम कमावा।
हे मातृभूमि ! तू सिरताज
भेंट च त्वे कू सुहाग आज।।

—भारत माँ ! आपके पवित्र चरणों में मैं अपना सर्वस्व अर्पण करती हूँ। मेरे प्रिय ! मन में किसी तरह का फिक्र मत करना, रण में धैर्य और वीरता से लड़ शत्रु के दाँत खट्टे करना, कहीं विचलित न हो जाना।

यदि सकुशल विजयश्री प्राप्त कर लौटने का सौभाग्य मिले तो अमर वीर दरबानसिंह और अमर शहीद की सुमन की भाँति नाम कमाकर आना। (दरबानी और दरबानसिंह ने विश्वयुद्ध में सर्वोत्कृष्ट विक्टोरिया क्रॉस पाया था)

प्रथम-युद्ध में नाम करने वाले गढ़वाली वीरों के कारण इसने दसुलेनरी-

यात्रा में जाते समय चौधरी चट्टो के पास देख, दो मिनट मौन श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

जन्मभूमि पर आये संकट के समय गढ़देशीय सैनिक ने केवल मर-मिटना सीखा, देश के हित मरना वह अपना कर्तव्य एवं गौरव मानता है। पर्वतीय लोक-जीवन की थाती, इस कर्मभूमि को ऊँचा करनेवाले सैन्य-भावना के ये लोक-गीत देश-भक्ति के प्रेरणा-स्रोत हैं। पवित्र मंदाकिनी और कालिन्दी के समान ये भावधाराएँ गढ़ प्रदेश की प्रत्येक घाटी में बहती हैं। प्राणों को देशार्पण करने की स्पृहा पुलक-पुलक में समाई रहती है।

तेरी गोदी कु त्वे यं मां
कन कं मोल भी द्यूंलो।
फरी का देश को सेवा
मि अपनी जान दे द्यूंलो॥

—मां! तेरी सुखदायी गोद में जन्म लेने का कर्जा मैं कैसे चुका सकूंगा! मुझे तो केवल एक ही रास्ता दिखाई देता है कि तुम्हारी सेवा ही दिन-रैन तन-मन-धन से करूँ। अम्बे! जब तेरे लिए बलिदान करने का वक्त आयेगा तो मैं कदापि पीछे नहीं रहूँगा।

विजयसिंह अपनी हँसमुखी मोहनी से तिलक लगवा, विदा हो, नगराज हिमालय के बर्फीले उत्तुंग शृंगों पर जा, हमलावरों को खदेड़, पारितोषिक पा, हवलदार बन अपनी प्रिया को पत्र लिखता है—

मेरा लाटा काला खिलाई पिलाई,
अंक्वे कि मैं तो लिखाई पढ़ाई।
मेरा प्यारो बेटा होलूं जवान,
भरती करं दे देश क बान।।'

—प्रिय मोहनी! मेरे बेटों को पढ़ा-लिखाकर जवान बनाना और भारत मां की सेवार्थ सेना में भर्ती करवा देना।

उक्त पत्र को पढ़ नवला मोहनी हर्ष-मग्न हो गई तथा चारों ओर से एक उदात्त गंभीर स्वर गूंज उठा—"धन्य सैनिक!"

पर्वतों की सन्तानें अपने गाँवों, धारों, पर्वतों, घाटियों, झरनों तथा पशु-पक्षियों के संग अपना गौरवमयी जीवन निर्वाह करते हैं। दूसरी ओर कठिन संघर्षमय पार्वत्य जीवन निहारते-निहारते भी वे अपनी स्वाभाविक मधुरता और प्राकृतिक तादात्म्य को नहीं खो बैठते।

प्रकृति और राष्ट्र की स्थिति के सभी पक्ष गढ़वाली लोकगीतों में सहज में ही मिल जाते हैं। सौन्दर्यमयी धरती पर मानव के थिरकते चरण 'सराउं'

सैनिक नृत्य की भी सृष्टि करते हैं। राष्ट्र-सेवा एवं सैन्य-भावना का आधिक्य ही गढ़वाली लोकगीतों की प्रधानता है।

यद्यपि राजस्थान के रणबांकुरों एवं वीरांगनाओं ने समय-समय पर अपनी वीरता प्रदर्शित कर शत्रुओं के दाँत खट्टे किये हैं तथापि लोकगीत तो सैन्य-भावना से शून्य ही दिखाई देते हैं।

अतः मरुभूमि के लेखकों से सादर नम्र निवेदन है कि उक्त गीतों की भाँति राजस्थानी गीतों में सैन्य-भावना का पुट हो तो यहाँ के बच्चे-बच्चे और चप्पे-चप्पे में एक नव जागृति, नवचेतना की नव्य लहर का संचार हो, राजस्थान का चतुर्दिक उत्थान और विकास हो जाय तथा इसकी ख्याति और भी अधिक बढ़ जाय—ऐसी मेरी धारणा है।

भारत राष्ट्र की भाषाओं में भावात्मक एकता के स्वर

श्रीनन्दन चतुर्वेदी

भारत राष्ट्र की समस्त भाषाएँ वे प्रवहमान दुर्धर पयस्विनियाँ हैं जिनकी जल-वीथियों में एकता के स्वर गूँज रहे हैं। भावात्मक एकता की पावन ध्वनि ने विविध भाषाओं का शक्तिमान माध्यम लेकर केसर की क्यारियों से कन्याकुमारी तक तथा अटक से कटक तक इस देश के भूगोल से जन-भावना को सुदृढ़ सूत्र में बाँध दिया है।

भावात्मक एकता के स्वरों की परम्परा ठेठ वैदिक संस्कृत से चली है। पृथिवीसूक्त (अथर्व वेद—१२वां कांड) में ऋषि धरती माता पर सब-कुछ बलि देने के शुभ उद्यम में लगने की पावन कामना करता है। ऋग्वेद के ऋषि का कथन है—

> संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।
> देवा भागं यथापूर्वे सं जानाना उपासते॥
> समानो वा आकूतिः समाना हृदयानि वः।
> समानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति॥
>
> —ऋग्वेद १०।१६१।२

अर्थात्—हे मनुष्यो! परस्पर मिलकर रहो, परस्पर संवाद करो। तुम्हारे मन एक-दूसरे से मिले हों, यही तुम्हारा कर्तव्य है। पूज्य देवगण भी परस्पर मिलकर संसार को चलाने में अपना कर्तव्य सम्पादित कर रहे हैं। तुम एक साथ चलो, एक-सा बोलो, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन समान हों।

इसी प्रकार यजुर्वेद ३६/१८ में कहा गया है कि सब लोग मुझको मित्र-दृष्टि से देखें। सबको मैं मित्र-दृष्टि से देखूँ। उपनिषदों में अनेकानेक स्थानों पर 'सर्व भूतांतरात्मा' की चर्चा मिलती है।

वैदिक ऋषि ने बड़ी उदारतापूर्वक धराधाम के सम्पूर्ण जीवों में समन्वय-स्थापना का उद्यम किया था। भारत मात्र ही नहीं, विश्व की भावात्मक एकता

में वैदिक ऋषियों का योग अविस्मरणीय है।

वैदिक संस्कृत के पीछे यही कार्य लौकिक संस्कृत द्वारा संपन्न हुआ जिसमें धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से घर-घर अलख जगाया गया।

महर्षि वाल्मीकि की उक्ति 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं, तथा विष्णुपुराण के रचयिता की उक्ति—

गायन्ति देवा: किलगीतिकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते,
भवन्ति भूय: पुरुषा सुरत्वात ॥

—विष्णुपुराण २/३/२४

अर्थात्—देवगण निरंतर यही कामना करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और मुक्ति-सुख के साधनभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे भारतीय हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं। राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से भाषा का कितना सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।

वायुपुराण का रचयिता जब कहता है कि—

उत्तरं यत्समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणाम
वर्ष तद् भारत नाम भारती यत्र सन्तति

तब वह भाषा के माध्यम से कितने बड़े भू-भाग के लोगों को एकता का आधार दे देता है!

गंगा च यमुना चैव गोदावरि सरस्वती,
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् संन्निधं कुरु।

तथा—

अयोध्या माया मथुरा, काशी काञ्ची अवन्तिका,
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्ष दायिका।"

के उद्घोषक दूरदृष्टा पौराणिकों एवं संस्कृत भाषा के उत्तरवर्ती साहित्यकारों ने मूर्त भूगोल से अमूर्त भावना का समन्वय कर जहाँ जन-जन के बीच की खाई पाटी वहीं उस अभंग राष्ट्रीयता को सुदृढ़ स्वरूप दिया जो भूमि, जन और संस्कृति त्रि-आयामी आधार लिये खड़ी थी।

संस्कृत के बाद पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से देश की भावात्मक एकता पुष्ट हुई। बौद्धों की जातककथा में जैनियों की उपदेशपरक कथाएँ तथा दूसरा सर्व साधारण के मन को छूनेवाला साहित्य देश के जन-जन को सम्निकट लाता रहा। यह साहित्य किसी जाति या वर्ग विशेष का न रहकर सम्पूर्ण मनुष्य-समाज की निधि बन गया।

भारत राष्ट्र की भाषाओं में भावात्मक एकता के स्वर

□

श्रीनन्दन चतुर्वेदी

भारत राष्ट्र की समस्त भाषाएँ वे प्रवहमान दुर्धर पयस्विनियाँ हैं जिन
जल-वीथियों में एकता के स्वर गूंज रहे हैं। भावात्मक एकता की पावन
ने विविध भाषाओं का शक्तिमान माध्यम लेकर केसर की क्यारियों
कन्याकुमारी तक तथा अटक से कटक तक इस देश के भूगोल से जन-भावना
सुदृढ़ सूत्र में बाँध दिया है।

भावात्मक एकता के स्वरों की परम्परा ठेठ वैदिक संस्कृत से चली
पृथिवीसूक्त (अथर्व वेद—१२वां कांड) में ऋषि धरती माता पर सब-कुछ
देने के शुभ उद्यम में लगने की पावन कामना करता है। ऋग्वेद के ऋषि
कथन है—

> संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।
> देवा भागं यथापूर्वे सं जानाना उपासते ॥
> समानो वा आकूतिः समाना हृदयानि वः।
> समानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति ॥
>
> —ऋग्वेद १०।१९१

अर्थात्—हे मनुष्यो! परस्पर मिलकर रहो, परस्पर संवाद करो। तुम्
मन एक-दूसरे से मिले ... । कर्तव्य है। पूज्य देवगण भी पर
... सम्पादित कर रहे हैं। तुम
। हों, तुम्हारे मन समान हों।
गया है कि सब लोग मुझको
। उपनिषदों में अनेकानेक स्व

धराधाम के सम्पूर्ण जीवों में सम
... की भावात्मक ए

मे वैदिक ऋषियों का योग अविस्मरणीय है।

वैदिक संस्कृत के पीछे यही कार्य लौकिक संस्कृत द्वारा संपन्न हुआ जिसमें धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से घर-घर अलख जगाया गया।

महर्षि वाल्मीकि की उक्ति 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं, तथा विष्णुपुराण के रचयिता की उक्ति—

गायन्ति देवा: किलगीतिकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते,
भवन्ति भूम: पुरुषा सुरत्वात ॥

—विष्णुपुराण २/३/२४

अर्थात्—देवगण निरंतर यही कामना करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और मुक्ति-सुख के साधनभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे भारतीय हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं। राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से भाषा का कितना सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।

वायुपुराण का रचयिता जब कहता है कि—

उत्तरं यत्समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणाम
वर्ष तद् भारत नाम भारती यत्र सन्तति

तब वह भाषा के माध्यम से कितने बड़े भू-भाग के लोगों को एकता का आधार दे देता है।

गंगा च यमुना चैव गोदावरि सरस्वती,
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् संनिधं कुरु।

तथा—

अयोध्या माया मथुरा, काशी काञ्ची अवन्तिका,
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्ष दायिका।"

के उद्घोषक दूरदृष्टा पौराणिकों एवं संस्कृत भाषा के उत्तरवर्ती साहित्यकारों ने मूर्त भूगोल से अमूर्त भावना का समन्वय कर जहाँ जन-जन के बीच की खाई पाटी वहीं उस अमंग राष्ट्रीयता को सुदृढ़ स्वरूप दिया जो भूमि, जन और संस्कृति त्रि-आयामी आधार लिये खड़ी थी।

संस्कृत के बाद पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से देश की भावात्मक एकता पुष्ट हुई। बौद्धों की जातककथा में जैनियों की उपदेशपरक कथाएँ तथा दूसरा सर्व साधारण के मन को छूनेवाला साहित्य देश के जन-जन को सम्मिश्ट लाता रहा। यह साहित्य किसी जाति या वर्ग विशेष का न रहकर सम्पूर्ण मनुष्य-समाज की निधि बन गया।

खड़ी बोली हिन्दी के विकास से बहुत पूर्व ही पूरब से पश्चिम तक समूचे भारत की अपभ्रंश भाषाओं ने बड़े-बड़े कुंज खड़े कर दिए थे जिनकी छाँह में देश का जन-जीवन क्लांति मिटाता रहा।

उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक अपने पैरों से देश की धरती नापनेवाले मनमौजी संतों की 'सधुक्कड़ी' भाषा भी भावात्मक एकता में कम योगदायी नहीं रही। इन संतों ने जिस तरह छोटे-बड़े आदमी को अपनाकर वर्ण-हीन समाज की स्थापना की, उसी तरह देश की हर भाषा की शब्दावली को भी अपनाकर सर्वसुगम भाषा की सृष्टि की। संतों की भाषा बहता गंगाजल थी, जिसमें जो भी नहाया, अपने भेद-भाव का मल गमा गया; भावात्मक एकता के रंग में रम गया। संत ज्ञानेश्वर ने 'सर्वघटी राम देहा देही एक' कहकर इसी एकता का प्रतिपादन किया है। गोरख ने, सिद्धों ने तथा सरहपाद ने भी भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच अभेद को दिखाया था। कबीर जी के शब्दों में भावना की कितनी एकता जुड़ी है—

हिन्दू से राम, अल्लाह तुरुक से बहु बिधि करत बखाना,
दुहुँ को संगम एक जहाँ तहवाँ मेरा मन माना।

गुरु नानक जी भी ऐसी ही बात कहते हैं—

ना हम हिन्दू ना मुसलमान,
दोनो बिच्च अर्स शैतान,
एकै एकौ एक गुमान।

महान संत धना कहते हैं—

राम कहो, रहमान कहो,
कोई कान्ह कहो महादेव री
पारसनाथ कहो ब्रह्मा,
सकल ब्रह्म स्वयंसेवरी।

यहाँ तो वैष्णव, शैव, जैन, अद्वैती और मुसलमान—सभी के बीच अभेद स्थापित किया गया है।

इसी प्रकार की बात गरीबदास, दरिया साहब, तुकाराम, रैदास, धरणी आदि संतों ने भी कही है। समर्थ गुरु रामदास ने भी अपनी भाषा से भावात्मक एकता के सेतुबंध को पुष्ट किया है।

सधुक्कड़ी के बाद भावात्मक एकता की यह बोली उत्तर भारत में पहाड़ी, डोगरी, पंजाबी, लहँदा, सिन्धी, पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी (अर्थात् खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रज, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मगही, मैथिली, भोजपुरी, उड़िया), असमी, बंगला, गुजराती, उर्दू तथा दक्षिण में मराठी, कन्नड़, मलयालम,

तमिल, तेलुगु आदि राष्ट्रीय भाषाओं के सरिता-जल से सिंचित होकर पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुई।

तुलसीदास का 'रामचरितमानस' इस दिशा में सुनियोजित ढंग से सम्पादित अवधी भाषा का बहुत बड़ा अभियान था। सूर, मीरां व नरोत्तमदास आदि भक्तों की भावधारा केवल उनकी नहीं, भारत के जन-जन की निधियाँ थीं।

'सुरसरि सम सब कहँ हित होई' की उक्ति जन-कल्याण और समष्टिगत सुख की कितनी विराट भावना से ओत-प्रोत थी।

भावात्मक एकता की पुण्यतोया वीथियाँ विविध भाषाओं की सहज-गति-सरिताओं में अविरल वेग से सतत बहती हुई आज के युग तक जन-मानस को नहलाती रहीं और इस पुण्यकार्य में उत्तर व दक्षिण की समस्त भाषाओं, विभाषाओं व बोलियों का योग रहा।

भारत राष्ट्र की भावात्मक एकता को तमिल-भाषी सुब्रह्मण्य भारती कितना योग दे रहे थे, जब वे कह रहे थे—

"हमारी भारत माता कोटि-कोटि मुखवाली है किन्तु उसमें निहित प्राण तो एक ही है। यद्यपि वह अठारह भाषाएँ बोलती है तथापि उसकी मूल धारा तो एक ही है।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—

हे मोर चित्त, पुण्यतीर्थे जागो रे धीरे,
एई भारतेर महा मानवेर सागर तीरे।
केह नाहि जाने, कार आह्वाने कत मानुषेर धारा,
दुर्वार स्रोते एलो, कोथा हते, समुद्रे हलो हारा।
हेथाय आर्य, हेथा अनार्य, हेथाय द्राविड़, चीन,
शक-हूण दल-पाठान-मोगल एक देहे हलो लीन।
रण धारा वाहि, जय गान गाहि, उन्माद कलरवे,
भेदि मरु-पथ, गिरि पर्वत यारा एसे छिले सबे।
तारा मोर माझे सबाई विराजे केहो नहे नहे दूर,
आमार शोणिते रयेछे ध्वनित तारि विचित्र सुर।

अर्थात्—हे मेरे हृदय ! इस महा मानवता के उदधितीर भारत देश में धैर्यपूर्वक श्रद्धा के साथ जागरण कर। कोई नहीं जानता किसके आह्वान पर मनुष्यता की कितनी धाराएँ दुर्वार वेग से प्रवाहित होती हुई यहाँ आयीं और इस विशाल सागर में समाहित हो गईं। आर्य, अनार्य, द्रविड़, चीनी, शक, हूण, पठान, मुग़ल आदि सभी इस धरती पर एक साथ मिल गए हैं। रण की धाराएँ बहाते, उन्माद के कलरव में जयगान गाते हुए, मरुपथ को पार करके और पर्वतों को लाँघते हुए जो लोग उत्साहपूर्वक इस देश में आए थे, उनका अब यहाँ कोई

पृथक् अस्तित्व नहीं रहा। वे सब-के-सब मेरे अंतर में विराजते हैं। कोई दूर नहीं है। मेरे शोणित में रमा हुआ उन सबका स्वर ध्वनित हो रहा है।

मलयालम के कवि श्री उल्लूक एस० परमेश्वर अय्यर कहते हैं—

इम्मर इतोप्पिले तँर्माणक्का टिटे,
मर्मर वाक्यत्तिन्नर्य मेन्तो ?
एन्नयल्कार निलनिन्नुप्रान,
भिन्न नेन्लेन्वंडु निन्नितु वन्नुरप्पू।

अर्थात्—विपिन के बीच मारुत के शब्दों का क्या अर्थ है! पवन आता हुआ यही कहता है कि मैं और मेरा पड़ोसी भिन्न नहीं है।

मलयालम के ही दूसरे कवि श्री वल्लत्तोल कहते हैं—

कैकयुकित्तुइयुक्कुकी कोडि मेडु कान्,
नम्मळ् नुट्टा नल कोन्डुम नम्मल नेमुता-वस्त्रम्,
कोंडुम्

जिसका आशय है कि भारतमाता की पावन कोख से जन्मे सभी भारतीय भाई-भाई हैं। अपने शक्तिमान हाथों में इस पवित्र ध्वज को थामे-थामे, आओ! हम सब आगे बढ़ते जाएँ।

पंजाबी के कवि गोहर का कथन है—

मिले दिलांनु काहनुं बिछोड़ माई,
लेकर बिछड़ ग्रां नइयाँ मिलाणा जोगा।

अर्थात्—यदि तुझ में बिछुड़े दिलों को मिलाने की सामर्थ्य नहीं है तो मिले हुए दिलों को क्यों फोड़ रहा है?

इसी प्रकार की एकतामूलक उक्तियाँ डोगरी भाषा के कवियों-लेखकों में मिलती हैं, ऐसी ही उड़िया के कवियों में तथा इसी भाव की प्रेरक उक्तियाँ भारत की अन्य समस्त भाषाओं में देखी जा सकती हैं।

'वंदेमातरम्' का प्रातःस्मरणीय भावपूर्ण उद्बोधन-मंत्र, 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' का कल-कंठ-स्वर, 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' का प्रेरणास्पद नारा, 'सुरलोक से भी अनुपम ऋषियों ने जिसको गाया, वह मातृभूमि मेरी वह पितृभूमि मेरी' की उद्बोधक वाणी और 'तन समर्पित, मन समर्पित और यह जीवन समर्पित, चाहता हूँ—देश की धरती, तुझे कुछ और भी दूँ' (रामावतार त्यागी) का समर्पण-भाव भावात्मक एकता को राष्ट्रीय भाषाओं का उपहार है।

विभिन्न भाषाओं की अभिव्यक्तियों में भावात्मक एकता की ये पावन कोकिलें सतत ध्वनित होती रहीं, होती ही रहेंगी अनन्तकाल तक जब तक यह हमारा देश—भारत राष्ट्र जीता है।

देख कबीरा रोया

गुलाबचन्द रांका

शिक्षा का स्तर गिर रहा है। स्कूलों में अनुशासन नहीं रहा। शिक्षा-नीति में आमूलचूल परिवर्तन अपेक्षित है। अमुक विद्यालय का प्रतिशत परीक्षा परिणाम नितान्त सोचनीय रहा। अध्यापक पढ़ाने-लिखाने नहीं। आजकल के काहे के शिक्षक और काहे के स्कूल? सब कबूतरखाने हैं। ऐसे अनेक शब्दबाण आए-दिन दल-नेताओं, अधिकारी वर्ग, यहाँ तक कि कभी-कभी शिक्षा-जगत से अनभिज्ञ, साधारण बैठे-ठाले ग्रामीणों द्वारा भी छोड़े जाते रहे हैं। और इन सभी शब्द-बाणों की चिड़िया की चोट होता है समाज का साधारण किन्तु शिक्षा-जगत का असाधारण शिक्षक, मास्टर, अध्यापक।

प्रजातंत्र में गुणों की अपेक्षा अवगुणों पर दृष्टि ठीक जमती दिखाई देती है। अधिकार समझते हैं। कर्तव्यों के काले क़ानून नागफनी-से फैलते चले जाते हैं। बेचारा शिक्षक-वर्ग इसमें जकड़ता चला जाता है, चला आ रहा है, और न जाने कब तक जकड़ता चला जायेगा? द्रौपदी के इस चीर की न सीमा दीखती है, न अन्त।

शिक्षक का काम है शिक्षा-प्रसारण, पढ़ाना-लिखाना, समाज की नवपीढ़ी को शिक्षित एवं सुसंस्कृत करना। बस, यही क्या कम काम है? क्या कम जिम्मेवारी है? किन्तु यह किसे पता है कि जो भार शिक्षक को सौंपा जाना चाहिए, वस्तुतः उसे सौंपता ही कौन है? शिक्षा-नीति निर्धारित करे कोई मंत्री, संचालन करे कोई डायरेक्टर, पुस्तकें लिखें वे जो उन कक्षाओं में पढ़ाना तो दूर—एक क्षण कभी किसी कक्षा में खड़े तक नहीं रहे। पर शिक्षण-कार्य करे शिक्षक। कैसा शिक्षक? जो जीवन-भर पढ़ाता रहा, किन्तु उसके अपने विषय में उसकी अपनी कक्षाओं के पाठ्यक्रम-निर्धारण में उसका कोई हाथ नहीं, उसकी कोई पूछ नहीं। क्यों? शिक्षक जो है। सरकारी नौकर है। विभागीय पचांग (कैलेण्डर) की घड़ी पर सुई की तरह जुलाई से मई मास तक घुमाया जाता है।

इस समय शिक्षक का शारीरिक रूप से दरवाजा-पार घोषित है, किन्तु

मानसिक रूप से इन दिनों वह स्थानान्तर रोग से ग्रसित हो जाता है। भाषणों-व्याख्यानों में बहुधा सुनते हैं कि स्थानान्तर आदि कार्य जून तक हो ही जाने चाहिए। किन्तु इस चाहिए का चीर बढ़ता ही जाता है। जुलाई, अगस्त, सितम्बर—न जाने किस माह तक आदेशों की इन्तजार करनी पड़ेगी। कब तक ग्रेड-प्रमोशन होगा ? कोई सर्वमान्य नियम नहीं है। स्थानान्तर चाहा ही नहीं था, हो गया। कैसे कैंसिल कराऊँ ? जान-पहचान है नहीं, कहीं पहुँच भी नहीं। मन मार बैठा। ऐसा शिक्षक क्या खाक पढ़ायेगा ?

स्कूल खुल गए। पुस्तकें बदल गईं। पुस्तकें छप रही हैं। बाजार में नहीं आयीं। शिक्षक क्या करें ? तब तक सामान्य ज्ञान-चर्चा करें। मौखिक ज्ञान दें। कोर्स लम्बा, पुस्तकें उपलब्ध नहीं, परीक्षा समीप, परिणाम स्वतः स्पष्ट ! किन्तु दोषी शिक्षक ! "स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व शिक्षक जो शिक्षक था, आज नहीं रहा।" कुछ लोग कहते सुने जाते हैं। ठीक ही तो कहते हैं।

पहले ग्राम चुनाव नहीं होते थे, पचायत-चुनाव नहीं होते थे। अध्यापक अपना मुख्य काम पढ़ाना छोड़कर चुनाव के चक्कर में स्कूलें बंद नहीं रखते थे। किन्तु आज बेचारे शिक्षक की भली बनी है। जनगणना में शिक्षक, पशु-गणना में शिक्षक, उप-चुनाव मे शिक्षक, प्रौढ़-शिक्षा-प्रसारण में शिक्षक, वृक्षारोपण मे शिक्षक, उद्योग पर्व-संचालन में शिक्षक, छात्रवृद्धि-अभियान तथा 'स्कूल चलो आन्दोलन' मे शिक्षक—सर्वत्र शिक्षक-ही-शिक्षक! फिर भी शिक्षण-कार्य तो है ही।

किसी प्रकार इनसे निवृत्त हुए तो फिर शाला टूर्नामेंट, वार्षिकोत्सव की तैयारी, जयंतियाँ, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय त्योहारों को मनाने की शृंखला शिक्षक को जकड़े रहती है। बीच-बीच में सेमिनॉर, कार्यशाला, अभिनवन-प्रशिक्षण आदि की कड़ियाँ शिक्षक-कार्य-भार-शृंखला की लम्बाई में श्रीवृद्धि करती चली जाती हैं।

लोग फिर भी कहते हैं—अध्यापकों के पास सिवाय पढ़ाने के काम ही क्या है ? अरे, केवल पढ़ाने के लिए उसे छोड़ता ही कौन है ? आए-दिन रेड-क्रॉस की झण्डियाँ, शिक्षक-दिवस की झण्डियाँ बेचना भी तो उसी को है। कहीं स्काउट भवन बन रहा है, चन्दा एकत्रित करे शिक्षक ! जिले के अस्पताल का विकास हो रहा है, स्कूल-भवन बन रहा है, चन्दा बटोरे शिक्षक !

इस प्रकार आज का शिक्षक एक शिक्षक ही नहीं, वह एक किसान भी है, जो स्थानान्तर, तरक्की के राजकीय आदेशों के सुहावने बादलों की इन्तजार में सदैव आसमान की ओर टकटकी लगाए रहता है। वह एक मजदूर है जो घर-घर घूमकर गणना-कार्य किया करता है। वह एक माली है जो वृक्षारोपण करता है। वह एक नट है जो विद्यालय-मंच पर सदैव उपस्थित रहता है। वह एक व्यापारी (सेल्समेन) है जो झण्डियाँ बेचा करता है, और तो और वह एक

खोमचेवाला है जो दोपहर को स्कूल के अहाते में पकौड़े निकाला करता है।

इन सब कार्यों के करते रहते हुए भी वह समाज में शिक्षण-कार्य भी करता है। वेतन उसको शिक्षण-कार्य के नाम पर दिया जाता है, पर कार्य उससे दूसरे भी लिए जाते हैं। फिर भी वह अपना कार्य मुस्तैदी से करता है। विद्यालय में नियमित रूप से उपस्थित होता है, नियमित रूप से डायरियाँ भरता है, पाठन-कार्य का लेखा वार्षिक, मासिक व दैनिक रखता है। फिर पाठन-कार्य निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार नियमित रूप से करता है। छात्रों के लेखन-कार्य की जाँच करता है। वाणी और हाथ दिन-रात विश्राम नहीं लेते। थकान उसे नहीं आती! क्योंकि वह मानव नहीं, मशीन है। मशीन के पुर्जे भी तेल माँगते हैं, सफाई चाहते हैं, पर शिक्षक की कौन सुनता है? 'शिक्षक समाज का निर्माता है', उसका निर्माण कौन करे! छात्रों को कहता है, बतलाता है, प्रत्येक बालक को इतनी कैलोरी चाहिए, इतने विटामिन चाहिए, इतनी फैट चाहिए, इतनी मात्रा में दूध, दही, मक्खन, घी, फल और हरी सब्जियाँ चाहिए। पर शिक्षक को स्वयं क्या और कितना चाहिए? न समाज ने इस ओर कभी सोचा, न सरकार ही सोचने का प्रयास करती है। पर शिक्षक बेचारा जैसे-तैसे अपना कार्य करता चला जाता है। कभी बीमार, तो कभी बच्चों की शादी, तो कभी माता-पिता की मृत्युवश अवकाश ग्रहण करने को बाध्य हो जाता है और एक दिन वह भी आ जाता है, जब विभाग की सेवा करते-करते उसे पचपन वर्ष पूरे हो जाते हैं। उसकी सेवाओं के प्रतिकार में वह नजारा भी देखते ही बनता है जब वह दफ्तर के बाबुओं के सामने अपने अवकाश की मजूरी, वार्षिक वेतन, वृद्धि, पेंशन केस की पूर्ति के लिए चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में खड़ा गिड़गिड़ाया करता है। समाज के जिस कारखाने से ये बाबू निकले, ये अफसर बने, वे इस बात को कुछ देर के लिए न जाने क्यों भूल जाते हैं कि अन्ततः वे सब उस कारखाने की प्रोडक्शन हैं, पैदावार हैं जिनके निर्माता आज स्वयं उनके सामने खड़े हैं और वे कुर्सियाँ तोड़ रहे हैं। बेचारा सहनशील शिक्षक इन सबको सहन करता चला जाता है, फिर भी ताड़ना मिलती है—धैर्य नहीं है, सब्र नहीं है।

समाज में आज शिक्षक की स्थिति ताँगे के घोड़े-जैसी है, जो न बाएँ देख सकता है, न दाएँ। उसे निरंतर सीधे अपने कर्तव्य-पथ पर सरपट भागते रहना पड़ता है। समाज में मामूली-से वेतन पर अपने दादा-दादी, माता-पिता, स्त्री-संतान का भरण-पोषण करे तो कैसे? यही एक प्रश्नचिह्न सदा-सर्वदा उसके सामने बना रहता है। मामूली-से वेतन के अतिरिक्त उसके आय के स्रोत नहीं। ट्यूशन की बात उन मुट्ठी-भर शिक्षकों पर लागू हो सकती है जो शहरों में लगे हुए हैं, अन्यथा अधिकांश शिक्षक ऐसे क्षेत्रों में जीवनयापन कर रहे हैं जहाँ ट्यूशन खुलकर विश्राम कर रही है। अवकाश के क्षणों में अध्यापक को अर्थो-

पार्जन करने की राज्य की ओर से कोई सुविधा नहीं; उल्टे किसी काम पर मजबूरीवश लग जाने पर सरकारी कर्मचारी होने के नाते अर्थोपार्जन नहीं करने दिया जाता। यह कैसा विधान है, कैसी व्यवस्था ? अपने और अपनी संतान के पेट के लिए जब वह वेतन-वृद्धि की मांग करता है, मँहगाई-भत्ते की याचना करता है तो उसका मुंह बंद करने के लिए सरकार उसे ऐसे कमीशन के भरोसे छोड़ देती है जो लाखों-लाख रुपये अपने दफ्तर पर खर्च कर उसे देता है पाँच या दस रुपयों की मामूली-सी तरक्की। फिर कमीशन भी ऐसे जिन्होंने शिक्षक-जीवन को न कभी देखा, न कभी अनुभव किया। एक वर्ष का सेवारत नया शिक्षक और बीस-पचीस वर्ष का सेवारत पुराना शिक्षक—सब बराबर। समानता के सिद्धान्त का अक्षरशः पालन करनेवाले यह न्यायाधीश अपनी न्याय की तराजू क्या उस समय भी अपने साथ रखते हैं जब मंत्रियों के लड़कों की शानदार शादियों में हजारों रुपये मात्र महफिलों में होम दिये जाते हैं। अधिकारियों के आलीशान बंगले खड़े हो जाते हैं। और तो और, पी. डब्ल्यू. डी., सिंचाई, पुलिस, राजस्व, आदि अनेकानेक विभागों में कार्यरत ऐसे अफसर और कर्मचारी जिनका वेतन शायद एक वरिष्ठ अध्यापक से कम ही होगा, पर शादी, समारोह, सामाजिक उत्सवों में केवल बिजली की रोशनी पर सैकड़ों का बिल चुकता होता है। राज्य की ओर से उनके लिए ऐसी क्या व्यवस्था हो सकती है जिनसे वे इतना अर्थोपार्जन कर सकें और शिक्षक बेचारा अपने भाग्य को कोसता रहे। भाग्य की यह कैसी विडम्बना है ?

आजकल एक और फैशन चल पड़ा है, शिक्षक और उसके पूर्वजों का एक और उपहास-अभियान का श्रीगणेश हो चुका है। 'आओ गुरु !', 'बैठो गुरु !', 'क्यों गुरु, क्या बात है ?'—इस प्रकार के वाक्य-उच्चारण समर्थ गुरु रामदास को गुरु मानकर शिवाजी नहीं, औरंगजेबी तबके के मामूली साधारण श्रेणी के ईर्ष्यालु प्राणी किया करते हैं जिन्हें न गुरु की गरिमा का ज्ञान है, न उसके पद की जानकारी। चाय के आधुनिक प्याले की तरह बेचारा गुरु हाट-होटलों में स्वच्छन्द रूप से सबका तकिया-कलाम बना हुआ है। उसका अपना कोई तकिया नहीं, यह भी कोई शिक्षक ही का दोष है ? समाज और सरकार की चक्की के दो पाटों के बीच आज के शिक्षक को पिसते देखकर बरबस कबीर की उन पंक्तियों का स्मरण हो आता है—

> चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय,
> दो पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय।

मात्र शिक्षक को सूखे और कोरे आश्वासनों से सड़ाया जाता है। समाज के निर्माता मात्र के नारों से भ्रमित किया जाता है। उसकी सुख-सुविधा, साधन-सम्मान के अधिकार मृगतृष्णा बने हुए हैं। गुरु वशिष्ट, विश्वामित्र, परशुराम,

द्रोणाचार्य एवं ऋषि भारद्वाज की ये संतानें आज न केवल पीड़ित, शोषित एवं संकटग्रस्त हैं अपितु अनाज जैसी आवश्यक वस्तु की गारण्टी तक प्राप्त नहीं हैं—समाज की इस विकृतावस्था में संतरी से लगाकर मंत्री तक चैन की बंशी बजा रहा है। वहाँ शिक्षक की करुण पुकार नक्कारखाने में तूती की आवाज सिद्ध हो रही है। कौन सुने शिक्षक की करुण पुकार ? सब मस्त पर शिक्षक त्रस्त !

लोगों का जीवन-स्तर बहुत ऊँचा है, बैल बॉटम, लम्बे कॉलरों की कमीज, स्लेक्स, पैरेलल, नाइटी, गरारा, शरारा, एलीफेण्टा मेरे देश की राष्ट्रीय पोशाक है। यहाँ कोई नंगा नहीं, कोई भूखा नहीं कोई गरीब नहीं। कभी-कभी पत्रिकाओं में यह भी आ जाता है ठीक उसी तरह मानो कोई अमीर साल में एकाध बार अपनी अमीरी का स्वाद बदलने गरीब का मुखौटा धारण कर ले। मेरा देश दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद में ही सिमटकर रह गया है, वह भी केवल भव्य भवनों तक। ताजमहल, सन एण्ड सैण्ड होटल तक, या अशोका तक। मेरे देश में लीडो है जहाँ शाम की चाय साढ़े छह और डिनर दस रुपये का मिलता है। पत्रिकाओं और पत्रों से तो ऐसा ही लगता है, कि मेरा देश गाँवों से गायब हो गया है या गाँव मेरे देश से गायब हो गये हैं। क्या वास्तव में ऐसा है ? तो क्यों आज मेरा घर शाम तक धूल से भर जाता है ? क्यों मैं ऐसी जगह पर हूँ जहाँ मेरे चारों ओर अधनंगे, भूखे, चिचुके चेहरों का जमघट है ? क्यों घास से निकले दानों को राँधकर खानेवाले लोग हैं ? और क्यों राशन कार्ड के तीस पैसे के लिए अपना सतीत्व बेचनेवाली नारियाँ हैं ? आज किसी उपन्यास में न 'गोदान' का होरी है, न 'मैला आंचल' का डॉक्टर, न 'तीसरी कसम' का हीरामन है, न 'बूढ़ी काकी' की काकी। प्रेमचन्द के बाद रेणु और नागार्जुन या अपवाद-स्वरूप 'राग दरबारी' और 'आधा गाँव' को छोड़कर कौन-सा उपन्यास है जिसमें मेरा देश या मेरा गाँव हो। देख रहा हूँ गोयल नॉवल स्टोर पर ढेर सारे नये चमचमाते उपन्यास आये हैं। जी ललचा उठा है। लेकिन देख रहा हूँ—आधा स्टोर गुलशन नन्दा, साधना प्रतापी, शेखर, राजवंश, कर्नल रंजीत, चन्दर, इब्ने शफी, अकरम इलाहाबादी, प्रेम वाजपेयी से भरा है जिनका हर पात्र अलौकिक, है—कारवाला, बंगलेवाला, करोड़पति होकर गरीब लड़की से प्रेम करनेवाला। कहीं मेरे गाँव की झमकू नहीं मिलती जो गोबर बेचकर, लकड़ी बेचकर अपने अपाहिज पति का पेट भरती है। "क्या वेदी की 'एक चादर मैली-सी' मिलेगी ?" मेरे पूछने पर दूकानदार हँसता है; ग्राहक हँसते हैं। तारा बाबू की 'दुनिया एक बाजार' की प्रति खरीदते समय सब ठहाके लगाते हैं। वे मुझे गुलशन नन्दा पढ़ने की सलाह देते हैं, मैं मूर्ख उनकी सलाह न मानकर उनके शब्दों में उबानेवाले साहित्यकार पढ़ता हूँ। समानान्तर साहित्य से भरे स्टोर्स में अनेक ऐसे लेखक मिल जायेंगे जिनके पात्रों के पास केवल कामवासना की पूर्ति के अतिरिक्त कोई काम नहीं, हर दर्जे की अश्लील किताबें। कक्षा में एक दिन अचानक छापा मारने पर पाली जैसे छोटे शहर के पन्द्रह-सोलह वर्ष की उम्रवाले लड़कों की पाठ्य-पुस्तकों में से आठ अश्लील किताबें बरामद हुईं। अश्लील पत्रिकाओं पर रजिस्ट्रेशन नम्बर तक। उधर जोधपुर विश्वविद्यालय में 'आधा गाँव' पर बवण्डर उठ खड़ा हुआ; यद्यपि बवण्डर खड़ा करनेवालों में शायद ही कोई ऐसा हो जिसने अश्लील

डायरी

एक दिन की डायरी

गोपालप्रसाद मुद्गल

मैं बीमार हूँ। सड़कवाले कमरे में पड़ा हूँ। तीन वर्ष का प्रतीत अपनी ज़िद लिए बैठा है। अपनी मम्मी से लड़ रहा है कि उसने रसोईघर की किवाड़ क्यों लगा दी? इसका बदला वह छोटे पड्डे को डण्डे मारकर ले रहा है। उसकी मम्मी कह रही है कि किवाड़ मैंने लगाये हैं, तुम पड्डे को क्यों मार रहे हो? किन्तु वह अपनी धुन में मस्त है। वह ऐं ऐं ऐं···की रट लगाये है। हाथ-मुँह धुलाने में मुँह फुला रहा है। 'रसोईघर की किवाड़ क्यों लगा दी?' बस, इसी रिकार्ड को बजा रहा है। उसकी मम्मी बार-बार अपनी गलती मान रही है किन्तु उसकी बालहठ सबके सिर पर है और मैं बीमार हूँ।

कमरे में चिड़िया चीं चीं-चीं-चीं करने में व्यस्त है। कभी इधर और कभी उधर। केवल फुर्र-फुर्र और चीं-चीं की धुन लिए है। कभी तसवीर की किनोर पर पंख सुजलाती है, कभी चोंच को पैनी करने को चौखटे पर इधर-उधर रगड़ रही है। मैं चाहता हूँ यह चुप हो जाय किन्तु उसे दूसरे के दुःख से क्या! वह तो प्रतीत की तरह गीत गाने में मस्त है। कभी तसवीर से गर्डर पर तो कभी जंगले की तानों से रोशनदान के आर-पार। मेरे न चाहने का उस पर कोई असर नहीं। उसकी किल्लोल चल रही है और मैं बीमार हूँ।

कमरे के बाहर मेरे छोटे भाई का कमरा बन रहा है। दोनों मिस्त्री पत्थर छाँटने में मस्त हैं। उनके हथौड़े और छैनी की आवाज़ मेरे भाई को खूब रुच रही है, दोनों मिस्त्रियों की रोटी भी सीधी हो रही है किन्तु कर्ण-कटु आवाज़ ने मेरी नींद हराम कर दी है। सभी को मालूम है कि मैं बीमार हूँ किन्तु उनकी खट-खट और खुट-खुट बदस्तूर चालू है।

और लीजिए, ईंट लगानेवालों ने तो गज़ब ही ढहा रखा है। ईंट के ट्रक का आना-जाना ही कम सिर-दर्द नहीं है, फिर ईंटों का सलाना एक अजीब तमाशा है। ईंटों के गिरने की आवाज़ अच्छे आदमी को भी बीमार कर दे, फिर बीमार पर क्या बीते यह तो केवल वही जान सकता है। मजदूर ईंटों को

बेदर्दी से फेंकने में मशगूल हैं, उन्हें दूसरे की कोई चिन्ता नहीं। उन्हें अपने काम-से-काम और मैं बीमार हूँ।

इन सबसे बढ़कर सिरदर्द बना हुआ है म्यूनिसिपल इलेक्शन। चुनाव-चर्चा तेजी पर है। चारों ओर वोट के लिए खिचतान हो रही है। माइक ने तो कमाल ही कर रखा है। मेरे कमरे के तीनों दरवाजों, दोनों खिड़कियों और चारों रोशनदानों से जो भुनभुनाती आवाज आ रही है उससे मेरी नींद हवा हो गई है। इच्छा होती है मैं इनके खिलाफ प्रचार करूँ किन्तु मैं तो बीमार हूँ।

चुनाववाले और कान खा रहे हैं। उनको तो चैन नहीं किन्तु मैं स्वयं बेचैन हूँ। वे बेचैन को चैन से कोसों दूर रखना चाहते हैं। चुनाव में मेरे एक चचेरे भाई, दूसरे मेरे हितैषी के पिताजी तथा तीसरे मेरे जिगरी दोस्त वार्ड नं० छह से खड़े हैं। किसके स्वर में स्वर मिलाऊँ, समझ में नहीं आता। उन्होंने मेरी बीमारी और बढ़ा रखी है। वे कहते हैं, मैं जल्दी खाट छोड़ दूँ किन्तु मैं चाहता हूँ कि तीनों का बना रहने के लिए बीमार ही बना रहूँ तो अच्छा है। तीनों पर अपनी धुन सवार है और मैं बीमार हूँ।

यह लो, बाल-मन्दिर के एक युवक आ पधारे। सरकारी नौकरी की तलाश में हैं। वे चाहते हैं कि यदि मैं···तक चल सकूँ तो उन्हें लैब-बॉय की नौकरी मिल जायेगी। उन्हें कैसे समझाया जाय कि वहाँ तो···आदमी लगेगा किन्तु उन्हें कोई आशा की किरण दीख रही है। वे अपने लोभ के लिए मुझे लिवा ले जाने की ज़िद में हैं। मैं बीमार रहूँ या अच्छा उन्हें कोई मतलब नहीं, उनको नौकरी मिलनी चाहिए।

युवक से छुट्टी मिली कि आ गये युवक के साथ उनके सिफारिशी, और मेरे मित्र। फिर पुराना रिकार्ड चढ़ गया। मैं बेहद चिढ़ रहा हूँ किन्तु उन्हें कोई चिन्ता नहीं। मैं अपनी बात कह रहा हूँ किन्तु उन पर धनहरण का भूत सवार है। किसी भी तरह धन आये, उनके लम्बे-चौड़े प्लान हैं। किसी को नौकरी दिलाने के आश्वासन से या किसी को बी. एड. में दाखिला दिलाने के लालच से। वे भैंस समेत खोया करना चाहते हैं। मेरे सहारे भी उन्हें धन हड़पने की सूझी है। उन्हें कैसे समझाऊँ कि इन तिलों में तेल नहीं। उन्हें कैसे नीचे लाऊँ? दलील देने से मजबूर हूँ क्योंकि मैं बीमार हूँ।

उनसे पिण्ड छूटने भी नहीं पाया कि दस-पन्द्रह लम्बे खलीते लिए आ धमके साहित्यिक पड़ोसी श्री भटनागर। दैवयोग की बात, उन्होंने भी आज ही डायरी-शैली में उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया है। हरेक नयी उपलब्धि को दुहराना चाहते हैं। उन्होंने अपने रसपाठ की पुनरावृत्ति के लिए मुझे ही उपयुक्त समझा। मैंने भी शिष्टाचार के नाते सुनने की उत्सुकता ही जाहिर की क्योंकि मना करके असाहित्यिक होने का भय था। खैर, वे सुनाते रहे, मैं सुनता

रहा। बीमार दिमाग ने साठ प्रतिशत से अधिक ग्रहण कर उत्तीर्ण होने के लिए प्रथम श्रेणी से अधिक अंक पा लिये थे किन्तु उनकी डायरी की कड़ी कहीं-कहीं एकदम टूटती-सी अर्थ को अवश्य खत्म कर रही थी किन्तु मुझे 'हाँ, हूँ' करने में कोई आपत्ति नहीं थी। सौभाग्य से साहित्यिक मित्र की खोज में पड़ोसी ग्राम सिनसिनी के एक अध्यापक आ धमके और उनका हनुमान-चालीसा अधूरा ही रह गया। मैंने सोचा, मुझ बीमार को राहत मिलेगी किन्तु उनका एक वाक्य मुझे और आफत दे गया। श्री भटनागर ने कहा—"मैं स्नान कर आऊँ, आप बातचीत कर लीजिये।" मैं जिससे जितना बचना चाहता था उतनी ही परेशानी और लद गई। श्री भटनागर साहब चले गये और उनकी भगत मैं बजाता रहा। वे कुछ उलाहने देते रहे। उन्हें कोई चिन्ता नहीं कि मैं बीमार हूँ।

सच मानो वणिक-बुद्धि चल रही है। प्रत्येक अपने लोभ पर दूसरे का हिमालय जैसा लाभ होम करने को तैयार है। हरेक को अपना लाभ ही अर्जुन की चिड़िया का मस्तक बना है। मैं किससे कहूँ ? नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है ! सब अपनी-अपनी धुन में हैं और मैं बीमार हूँ।

डायरी के पन्ने

◻

योगेशचन्द्र जानी

दिनांक···आज उसने पूछा था कि साहब 'पवन' शब्द का सन्धि-विच्छेद क्या होगा ? उसके प्रश्न ने मेरे अथाह ज्ञान-सागर का मंथन कर दिया, किन्तु किसी अमृत की उपलब्धि नहीं हुई। उसे अल्पज्ञ सम्बोधित कर, सादेश स्वस्थान ग्रहण करा दिया ! उस छात्र की अल्पज्ञता पर मैं आज खूब हँसा—भला मूल शब्द का सन्धि-विच्छेद कर कोई महान शोधकार्य करना चाहता है। व्याकरणाचार्य बनने की लालसा में मेरी ज्ञान-निधि को अपनी कसौटी पर कसना चाहता है। मैं अपनी निधि को सगर्व श्रेष्ठ घोषित करना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ।

दिनांक···मुझसे आज पुन: अगली कक्षा में पूछा गया, 'पवन' शब्द का सन्धि-विच्छेद क्या होगा ? प्रश्न उठते ही मैं आगबबूला हो गया—प्रश्न पूछनेवाले की जमकर पिटाई हुई, साथ ही मेरे ज्ञान को सार्थक न समझनेवाले पहली कक्षा के छात्रों की भी।

दिनांक···आज मैंने प्रधानाध्यापक को उच्च प्राथमिक विद्यालयों की उच्च कक्षाओं के भाषा-अध्यापन का अनुभव सुनाते-सुनाते 'पवन' शब्द के सन्धि-विच्छेद का प्रश्न भी उनके सम्मुख रख दिया। अपनी प्रतिभा को सर्वोच्च मानते हुए मैंने विज्ञापित कर दिया कि 'पवन' शब्द मूल शब्द है। मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा—अच्छा, कल बात करेंगे।

दिनांक···आज प्रधानाध्यापक जी ने मुझे बुलाया। उनके मन में भावों का ज्वार उमड़ रहा था। 'पवन' शब्द की सन्धि का प्रश्न सप्रमाण सुलझाकर मुझे दिया। पो+अन=पवन(अयादि संधि)। ओ के बाद असमान स्वर होने पर उसका अव् हो जाता है। मैं उनका यह वाक्य पढ़कर—'सही ज्ञानार्जन के लिए विषय की अनन्त गहराई में डूबना आवश्यक है'—पानी-पानी हो गया।

दिनांक···आज कक्षा में 'पवन' शब्द का सन्धि-विच्छेद पूछनेवाले छात्रों को सप्रमाण सन्धि-विच्छेद बताया। उनके सम्मुख मान भंग करने पर भी बुद्धि ने अपनी अल्पज्ञता स्वीकार की। साथ ही प्रधानाध्यापक जी का भी आभार माना। शिक्षक के व्यावहारिक अनेक गुणों में से एक 'अल्पज्ञता स्वीकारना' ग्रहण कर सका। निश्चय ही अनवरत अध्ययन अनेक गुणों का जन्मदाता है।

राजा

मनसा मन्दिर की यात्रा

□

श्रीराम शर्मा

'कल-कल निनादी झरने, हरित वस्त्रावृत पर्वतावलि और नानाविधरूपा प्रकृति की वह सुरम्य छटा'—आज भी जब उसका स्मरण होता है तो मानसिक रूप से मैं वर्षानुवर्ष पूर्व के उसी वातावरण के मध्य-सा स्वयं को पाता हूँ। नीमकाथाना के उत्तर-पश्चिम मे अरावली की अत्युच्च पर्वतीय उपत्यकाओं में स्थित 'मनसा-देवी' की यात्रा ने हम सबके मन मे एक 'थ्रिल'-सा पैदा कर दिया था। पन्द्रह बालचर, एक वयोवृद्ध शिक्षक और मैं—निकल पड़े मनसा माता की तीर्थयात्रा पर।

उन दिनों मैं गुहाला (सीकर) मे पढ़ाता था। शिक्षक-जीवन के प्रारंभ में यात्रादि के लिए विशेष उत्सुकता रहा ही करती थी। गुहाला से मनसा देवी की यात्रा के लिए दो मार्ग है—एक सड़कवाला, दूसरा सीधा—केवल चार मील की दूरी से ही सीधा पर्वतों मे से होकर। निर्णय हुआ कि पर्वतोंवाले रास्ते से वहाँ जायेंगे। हमारे बीच इस मार्ग की एक ही बाधा थी—श्री बहोरीलाल—हमारी शाला के वयोवृद्ध शिक्षक। उनकी अवस्था का तकाजा था कि हम सड़कवाला मार्ग अपनाते, पर 'तन का प्रौढ़ और मन का युवक' वाली कहावत को चरितार्थ कर वे भी हम युवकों की टोली के ही साथ हो लिये।

शनिवार, दो बजे, मध्याह्न बाद हमारी यात्रा शुरू हुई। हमें पता था कि भोजन बनाने का सारा सामान मनसा मन्दिर में मिलेगा, अतः बालचर टोली ने अपने-अपने कन्धों पर भोजन-सामग्री ले ली। रास्ते मे केवल एक गाँव पड़नेवाला था—'मणकसास'। हमारा पहला पड़ाव इसी ग्राम का रहा। एक घंटे की इस यात्रा को बालको ने दौड़ते-कूदते, गाते-नाचते केवल चालीस मिनट में तय कर लिया। 'मणकसास' से ठीक आगे अरावली की वह दुर्निवार चोटी थी, जिसके ठीक पास से हमे मनसा मन्दिर पहुंचना था। श्री बहोरीलाल ने हम सबको हिदायतें दीं, तीन मील की चढ़ाई के लिए तैयार होने को कहा, गिनती

की, कुछ विश्राम किया, सबने पानी पिया और अब हमारी यात्रा शुरू हुई।

एक मील की चढ़ाई के बाद कुछ बालक धीरे चलने लगे। कुछ छात्रों का जोश तो अभी भी वैसा ही बना हुआ था, मानो अभी दो कदम में ही इस चोटी को लाँघ लेंगे। पहाड़ी पगडंडी के दोनों ओर के पेड़ों को निहारते, घिरमियाँ (गुंजिया) तोड़ते और हिसरिया (एक पहाड़ी रसाल) खाते सभी लोग चले जा रहे थे। छात्र बीच-बीच में 'भारतमाता की जय', 'बजरंग बली की जय' और 'हर-हर महादेव' के नारों से पर्वत-प्रदेश को गुंजाते जा रहे थे। वे एक आवाज लगाते, दूसरी आवाज पर्वत से प्रतिध्वनि के रूप में आती और छात्र आनन्दमग्न हो हँसी का ठहाका लगाते।

इस प्रकार हँसते-हँसाते, उछलते-कूदते हमने दो मील से अधिक की चढ़ाई पूरी कर ली। करीब-करीब सभी लोगों को हलकी-सी थकान महसूस होने लगी थी। श्री बहोरीलाल, जो करीब एक फर्लांग पीछे-पीछे चल रहे थे, थककर चूर-चूर हो गये थे। बाध्य होकर मुझे उनके साथ-साथ चलना पड़ रहा था। कहना चाहिए अठारह वर्ष की वय में ही वयोवृद्धता का स्वाँग करना पड़ रहा था। चल रहा था पीछे-पीछे पर मेरा मन छात्रों की उस टोली की हर उछाल से पहले उछल पड़ता था। कुछ देर के लिए सब रुके, हलका-सा विश्राम किया, अपनी-अपनी केतलियों से पानी पीकर आगे की यात्रा शुरू की।

यहाँ से थोड़ा आगे ही एक समस्या खड़ी हो गई। इस पर्वत-प्रदेश में निर्द्वन्द्व, एकछत्र अधिकारी के रूप में विचरण करने वाले लंगूरराज और उनके दल को हमारा यहाँ आना बड़ा खटका। छात्रों की हर आवाज के बाद हूँक-हूँक की गगनभेदी हुंकार लगाते ये बन्दर पर्वतों की टहनियाँ तोड़ने लगे। इधर छात्रों का भी कौतूहल बढ़ रहा था। दोनों ओर लंगूरों की टोलियाँ, बीच में हमारा दल। छात्रों ने लाठियाँ ले रखी थीं। बन्दर खीसें निपोरते, किट-किट और हूँ-हाँ करते हमारे साथ चले जा रहे थे। एक-दो छात्रों ने बन्दरों को छेड़ने की हरकत की तो तुरन्त हमने रोका क्योंकि इससे इस शीत-युद्ध का युद्ध में बदल जाने का खतरा था।

जब लंगूरों की संख्या बढ़ने लगी तो हमने एक बार ठहरने का निर्णय किया। न हम वापस लौट सकते थे और न निष्कंटक रूप से आगे जा सकते थे, क्योंकि बिना राम के इस वानर दल से भिड़ंत अवश्यम्भावी लगती थी। सोचा, शायद हमारे ठहरने से यह टल जाय। यदि नहीं तो फिर हमारे पास दानव दल तो था नहीं, अतः निर्णय किया कि कुछ ठहरकर निर्णय लिया जाय। हमारा ठहरना था कि अगले पचास कदम आकर लंगूरराज की एक हुंकार के साथ सारा वानर दल भी उस पहाड़ी पगडंडी के बीचोंबीच धरना देकर बैठ गया।

अब तो और भी मुसीबत खड़ी हो गई। उधर से भगवान भास्कर बड़ी तेज गति से अस्ताचल की ओर जा रहे थे, इधर युद्ध अवश्यम्भावी लगता था। बीहड़ वियावान जंगल, संध्या का सान्निध्य और ऊपर से नर-वानर-संग्राम का संकट। सबने मिलकर मन-ही-मन मनसा माता का स्मरण किया। अभी कुल चार मील और चलना था—एक मील चढ़ाई और तीन मील आगे। फिर भी कुछ बैठकर सोचने लगे, इस विकट स्थिति को कैसे टाला जाय?

हमारे इस नर-दल के बीच एक बालक मोहन यादव (जो अब थानेदार है) बहुत शैतान था। उसने हमसे नजर बचाकर एक चीज बन्दरों की ओर फेंकी। सारे बन्दर इसे युद्ध का संकेत मानकर उस पत्थरनुमा वस्तु पर टूट पड़े। वह जिसके हाथ लगी उसने देखा कि यह तो पत्थर नहीं, कोई और चीज है। अच्छी सुगंध देनेवाली, शायद खाने की हो। एक ने उसे मुँह से तोड़ा, तो बस लगा खाने। और फिर तो नजारा ही कुछ और था। छीना-झपटी और भाग-दौड़! दलपति को शायद यह अनुशासनहीनता नहीं भायी। वे भी दौड़-कर वहाँ आये, जहाँ यह उछल-कूद चल रही थी। उनके हुंकार भरते ही सब बन्दर परे हट गये। उन्होंने उस चीज के टुकड़ों को उठाया, देखा, सूँघा और अधिक देर तक लोभ संवरण नहीं कर सके। एक-एक टुकड़ा उठाकर खाने लगे। पास बैठी एक छोटी बंदरिया ने भी एक टुकड़ा उठाने की हिम्मत की तो वानर-राज ने उठकर उसे एक थप्पड़ जड़ दिया। बंदरिया बेचारी चरचिराकर दूर जा बैठी। वे किटकिटाने रहे—पहले दाँतों को, फिर उस खाद्य के टुकड़ों को।

हम सब बड़ी सतर्कता से सारी स्थिति को देख रहे थे। मोहन से पूछा तो उसने बताया कि उसने वानर दल की ओर अपनी माँ द्वारा बनाई गई और अपनी गैया के सद्यजात घी से सनी मकई की बाटी फेंकी थी। मकई की बाटी गयी पर एक तरकीब दे गयी। मोहन ने एक पत्थर उठाया और पहाड़ की ढलान की ओर फेंक दिया। वानरराज ने देखा—मकई की एक बाटी और, वे लपक पड़े पहाड़ की ढलान की ओर। फिर क्या था, इधर से पत्थर फेंके जाने लगे—जोर से, और जोर से, एक के बाद एक और फिर कई। वानर दल ने देखा, मकई की बाटियाँ चली जा रही हैं। होड़ मच गई उनमें, एक से दूसरा आगे जाने लगा वह सुवासित पदार्थ खाने—दूर बहुत दूर नीचे तक। जहाँ से उनका तुरन्त लौटना कठिन था। मनसा माता की कृपा कहिये या मोहन की चतुराई, यह खतरा दूर हुआ और हमारा दल आगे बढ़ने लगा।

पहाड़ की चोटी पर चढ़कर ज्योंही एक निहनाद लगाया कि एक दूसरी आफत आ गयी। प० बद्रीलाल जी ने बताया कि उन्हें कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा है। एकदम श्रवण-शक्ति गायब, शायद यह थकान का परिणाम हो। कुछ दूर चलकर उन्होंने कहा कि वे अब एक कदम भी नहीं चल सकते। बड़ी

विलक्षण स्थिति थी, हमारी सुन नहीं रहे थे और अपने बुजुर्गाना अन्दाज में हमें कोसते चले जा रहे थे—"बहुत कहा कि सीधे मन चलो, पर माने नहीं। ये तो बच्चे थे पर तुम भी नादानी कर बैठे। सरकार को इतनी छोटी उम्र में इन्हें शिक्षक नहीं बनाना चाहिए था।" खैर, बड़ी मुश्किल से इशारों-इशारों में उनसे क्षमा-याचना की और धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। वैसे अब रास्ता सुगम था, अतः चलने में कोई कठिनाई नहीं हो रही थी।

संध्या का समय, भाद्रपद मास के वे अन्तिम दिन, हरिततृणावृत पर्वत-प्रदेश की शीतल, मंद और सुगन्धित वायु—वह आनन्द वर्णन का नहीं, अनुभूति का विषय था। चन्द्रोदय से पूर्व ही हम मन्दिर के समीप जा पहुँचे। अपनी मंजिल आयी देख छात्रों ने 'हर हर महादेव' और 'जै जै काली' के सिंहनादों से वायुमंडल को गुंजाना शुरू कर दिया।

मनसादेवी के इस विशाल मन्दिर के सामने ही एक झरना है। जल अत्यन्त शीतल और मीठा। कुछ देर ठहरकर सबने उसका पानी पिया और तृप्ति की एक साँस ली। अरे, बहोरीलाल जी को सुनाई देने लगा। पानी क्या, यह तो चमत्कार है। "जय हो मनसा माँ तेरी, जगजननी, जगदंबे, तेरी माया अपार है।" पंडित जी कह उठे।

अपना-अपना भोजन कर सबने रात्रि में विश्राम किया। दूसरे दिन चूरमा, दाल और बाटी बनाकर मनसा माँ को भोग लगाया। मनसा माँ की यहाँ एक गुफा में प्राकृतिक प्रतिमा है—शिवलिंगनुमा, अमरनाथ की हिममूर्ति से बिलकुल मिलती हुई। जानकारों का कथन है इसे किसी ने बनाया नहीं, यह स्वयं पहाड़ चीरकर निकली थी। दर्शन, भोग, भजन और कीर्तन के बाद सबने भोजन किया। कुछ विश्राम करने के बाद उस पर्वत-प्रदेश की पुनः परिक्रमा की, झरने का शीतल मीठा जल पीकर मनसा माँ के दर्शनों के बाद लौटने की तैयारी हुई।

लौटने के लिए सड़कवाला मार्ग तय किया गया। सोलह मील के इस मार्ग में भी आठ मील का पर्वतीय इलाका और फिर छोटे-छोटे ग्राम और ढाणियाँ पार करते हुए रविवार की रात को आठ बजे हम गुहाला लौटे।

जीवन के चार दिन शेष थे

हुलासचन्द जोशी

सन् १९६४ के अक्तूबर माह में सीकर के पास एक गाँव के बाहर हमारा एन० सी० सी० का कैम्प लगा था। कॉलेज जीवन का मेरा यह पहला कैम्प था।

छोटी उम्र थी। उत्सुकता अधिक थी। प्रत्येक नये अनुभव के लिए तीव्र इच्छा रहती थी।

कैम्प का जीवन व्यवस्थित और आनन्ददायक था। सारा कार्य तेज़ी और स्फूर्ति से होता था। सभी को हुक्म था, 'प्रत्येक काम दौड़कर करो।'

सभी कॉलेजों को बारी-बारी से हर्ष-पर्वत तक पैदल यात्रा करनी थी सुबह नाश्ता करके रवाना होते थे और दूसरे दिन शाम को वापस आ जाते थे।

आज हमारे कॉलेज की बारी थी।

एक काफिला धूल का गुब्बार पीछे छोड़ता आगे बढ़ रहा था। खेतों में फसलें खड़ी थीं। चार-पाँच मील का रास्ता बातों-बातों में कट गया।

अब पहाड़ की चढ़ाई शुरू हुई। पहाड़ दूर से ज़रूर देखे थे। नज़दीक से देखने और चढ़ने का यह पहला अवसर था।

दूर से पहाड़ की चोटी कोई खास ऊँची नहीं लगती थी। ऐसा विचा[र] था कि अभी कुछ ही क्षणों में उसकी आखिरी चोटी पर होंगे। वृक्षों की हरियाली से घिरी प्रत्येक चोटी आखिरी चोटी लगती थी। ज्योंही उस चोटी को पार करते उतनी ऊँची चोटी फिर सामने खड़ी मिलती। चोटी-दर-चोटी पार करते गये। कभी इस पहाड़ की घाटियों में जंगली जानवर घूमा करते थे जो प्रायः बन्दूक के निशाना बन चुके थे।

ऊपर तक पहुँचते-पहुँचते सब थककर चूर हो चुके थे। पुराने जीर्ण मन्दिर की कला को देखने का कौतुक इतना प्रबल रहा कि जब तक उसे पू[रा] देख नहीं लिया गया, किसी को भी थकान का भान नहीं हुआ।

लोगों की घनी छोड़-गये प्रायः लोग भी चुके थे। ऐसा सुन्दर दृश्य देखने का फिर कब अवसर आये, कौन जाने?

सब को गोया छोड़ मैं उठ खड़ा हुआ। एक चट्टान से दूसरी चट्टान को पार करते काफी दूर निकल गया।

छोटे-छोटे पोखरों में पानी को जानवरों ने गँदला कर रखा था। बकरियों का भुंड आसपास चर रहा था। कोई-कोई बकरी ऐसे स्थान पर खड़ी चर रही थी कि थोड़ी चूकी और गयी। कुछ ऐसी चट्टानों पर खड़ी थीं कि दिमाग में उलझन-सी उभर आती—'यहाँ बकरी कैसे चढ़ी होगी?'

एक ऊँची चट्टान के किनारे खड़ा होकर मैं चारों ओर के दृश्य देखने लगा—दूर-दूर तक के गाँव रुई के फाहे-से दिखाई दे रहे थे। उन पर धुएँ का धुँधला साया तैरता-सा नजर आ रहा था। गाँव बिलकुल स्थिर-से जान पड़े जैसे ऊपर से किसी ने उन्हें आहिस्ता से उतारकर रख दिये हों।

दूर नीचे—तालाब छोटे पोखरों जितने और ऊँट, बैल आदि जानवर भेड़ से भी छोटे दिख रहे थे।

चारों ओर हरियाली की चादर बिछी थी। इन स्वर्गिक क्षण में—नितान्त एकान्त में मैंने मुँह पर हाथ रखकर ज़ोर से आवाज़ दी, *'मैं यहाँ हूँ...'*

आवाज़ घाटियों से टकराकर गूँज उठी, *'मैं यहाँ हूँ! मैं यहाँ हूँ!'* कौतुक से मैंने कई आवाज़ें दीं।

नीचे भुककर कई छोटे-छोटे कंकड़ उठा लिए और ज़ोर से ऊपर उछालकर फेंकने लगा।

ऊपर से नीचे की ओर पत्थर एक अजीब सनसनाहट की आवाज़ के साथ नीचे और नीचे चला जाता। अजीब मज़ा-सा आ रहा था। पत्थर गिरने की आवाज़ नहीं आ रही थी। दूसरा पत्थर फेंका, कोई आवाज़ नहीं। तीसरा... चौथा...फेंका, कोई आवाज़ नहीं।

न जाने कहाँ जाकर गिरते थे।

पत्थर-दर-पत्थर फेंकते देख बकरी चरानेवाले लड़के ने मुझे टोका, 'बाबू जी! यहाँ से पत्थर न फेंकें। नीचे खड़े किसी जानवर या आदमी के ऊपर पत्थर चला गया तो उसे खतम ही समझिए।'

बात मेरी समझ में उस समय आयी जब मेरी धीमी-सी ठोकर से एक पत्थर लुढ़का और बन्दूक की गोली से भी तेज गड़...गड़...गड़ करता तेज गति से न जाने कहाँ चला गया। मैं साँस रोककर देखता रह गया। प्रत्येक चट्टान की टक्कर उसकी गति को तीव्रता प्रदान कर रही थी।

उस चट्टान के दूसरी तरफ कुछ नीचे उतरा। चट्टानों में चौड़ी-चौड़ी दरारें पड़ी थीं। एक दरार के किनारे पर मैं बैठ गया। आसपास की चट्टानों की घास को पकड़कर मैंने दरार के नीचे झाँका। आश्चर्य से सहम गया। मैं घुटनों के बल बैठकर जितना झुक सकता था, झुका किन्तु दरार का तल नहीं देख

सका। किसी गहरे कुएँ से भी न जाने कितनी गहरी दरार थी।

दरार ज्यों-ज्यों गहरी होती चली गयी थी, उसकी सतह चिकनी और सपाट होती चली गयी थी—अन्तहीन।

मैं दरार का तल देखना चाहता था, किन्तु यह असम्भव था। दरार में उतरा नहीं जा सकता था, न उसमें सहारे के लिए किसी प्रकार की घास ही खड़ी थी।

एक लम्बी साँस खींचकर मैं उठ खड़ा हुआ। तीन-चार कदम चलकर एक चट्टान पर बैठ गया और उन दरारों के बारे में सोचने लगा जिनका तल न जाने कहाँ था।

समय काफी हो चला था, फिर भी मन नहीं भरा था। ऊपर की बहुत बड़ी चट्टान केवल धरातल से सटी हुई खड़ी थी। चट्टान बाहों के घेरे से कुछ ही बड़ी थी। शायद जरा से धक्के की जरूरत थी।

अगर यह लुढ़क जाये तो कितना मजा आये। मैं ऊपर-नीचे उसके चारों ओर पैर जमाकर लुढ़काने का प्रयास करने लगा। काफी प्रयास से पसीना आ गया किन्तु चट्टान अपने स्थान से नहीं हिली।

थककर बैठ गया। आज इस चट्टान को लुढ़काकरही जाऊँगा, सोचते हुए मैंने दुबारा प्रयास किया। कुछ घास और पत्थर चटककर मेरे हाथ में इस तरह आये कि मैं पीछे की ओर डिग गया। भय से मेरा रोम-रोम काँप उठा। शरीर थरथरा उठा। चट्टान धकेलने के प्रयास में मैं भूल गया था कि मैं अभी तक दरार के कगार पर ही खड़ा मौत को निमन्त्रण दे रहा हूँ।

केवल एक-दो इंच का ही फासला था। थोड़ा-सा, केवल थोड़ा-सा—और डिग गया होता तो...

मैं दरार के तल पर पहुँच जाता और विद्यार्थियों की संख्या में एक की कमी हो जाती। किसी को पता भी नहीं चलता कि मैं कहाँ चला गया हूँ।

मैंने पसीना पोंछा। चट्टान उखाड़ने का विचार छोड़कर ऊपर चढ़ने लगा। चट्टान नहीं लुढ़का सका इसकी निराशा तब दूर हुई जब यह समझ में आया कि अगर चट्टान लुढ़क जाती तो मेरा क्या होता।

चट्टान ऊपर थी और मैं नीचे। चट्टान मुझे अपने में लपेटकर मेरे टुकड़े टुकड़े करते हुए न जाने किस तल पर जाकर रुकती।

मेरी उम्र ही लम्बी थी, नहीं तो मैंने अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ी थी। जब तक मैं वापस आया, गिनती शुरू हो चुकी थी। गिनती पूरी थी।

मैं मन-ही-मन हँस पड़ा।

५ बजे तक सब नीचे गाँव में पहुँच गये। रात उसी गाँव में बितानी थी।

सभी कामों के बाद सब सिकुड़ते-कुनकुनाते-कुनमुनाते अपने-अपने कम्बलों को चारों ओर लपेटकर सो गये। रातभर सायँ-सायँ करती आँधी का जोर कम हो चुका था। आँख खुली तो सुबह हो चुकी थी।

धूल झाड़कर सब अपने कामों में लग गये।

दूसरे दिन भी पहाड़ की चढ़ाई थी। करीब वहाँ से डेढ़ मील दूर पहाड़ी पर पुराना गढ़ था। गढ़ के दरवाज़े पर चमगादड़ लटक रहे थे। उनकी गंदगी से अजीब तीव्र गन्ध उठ रही थी। सभी नाक बन्द करके तेज़ी से दौड़ पड़ते थे। गढ़ का भीतरी भाग खुला और साफ था।

इतना बड़ा गढ़ मैंने पहले कभी नहीं देखा था। सब कुछ मेरे लिए नया था। प्रत्येक वस्तु को छू-छूकर देखता। अनेक कमरे और अनेक द्वार थे। हम न जाने किस द्वार से प्रवेश करते थे कि घूम-फिरकर वापस उसी स्थान पर आकर ठहर जाते थे।

अजीब भूलभुलैयाँ थी। फिर भी गढ़ का एक-एक कोना देख लिया था।

वहीं पर पानी के बड़े-बड़े हौद बने थे—बहुत ही गहरे और लम्बे-चौड़े। इतनी ऊँचाई पर इन चट्टानों को न जाने कैसे काटा और खोदा होगा—उस ज़माने के लोग ही जानें।

न जाने कैसे थे वे लोग। मैं ही नहीं, सभी भावुक हो उठे थे। सूबेदार मूँछ पर हाथ रखे उस स्थान पर बैठ गये जहाँ कभी राजा बैठा करता था। एक व्यक्ति बता रहा था, 'यहाँ राजा बैठता था...यहाँ दरबार लगता था...' एक काल्पनिक नक्शा उस समय का उस व्यक्ति ने खींचकर रख दिया था।

मन भावुक हो उठा—काश, वे लोग कुछ क्षणों के लिए जीवित हो उठते! कहीं थोड़ी-सी खनखनाहट सुनाई दे जाती!

केवल कल्पना थी। घुटकर रह गयी। वर्षों पुराना किला सुनसान पड़ा था। कभी यहाँ पायलें खनकती थीं...तलवारें खड़कती थीं...घोड़ों की टापें गूँजती थी।

आज यहाँ अभी कुछ शोर है, हमारे जाते ही वापस सूनापन उभर आयेगा। कुछ क्षणों के लिए किला जीवित हो उठा था।

छत की दीवार पर खड़ा होकर—झुककर मैं यह देखना चाहता था कि गढ़ की पहाड़ से ऊँचाई कितनी है और फिर वहाँ से पहाड़ की नीचाई कितनी है। दोनों तरफ की दीवारों का सहारा लेकर मैं पूरा चढ़ भी नहीं पाया था कि एक

साथी ने हाथ पकड़कर नीचे खींच लिया, 'चक्कर खाकर गिर गये तो नीचे से लाश लानेवाले नहीं मिलेंगे। घरवाले इन्तजार करते ही रह जायेंगे कि बेटा अब आये—अब आये।'

मन मारकर रह गया। नीचे पैरों के पंजों के बल खड़ा होकर जो कुछ देखा उतने पर ही सन्तोष कर लिया।

अब काफी समय बाद लगता है कि मैं उस दीवार से गिर सकता था।

चमेली की बेल आँगन में फैली थी। मन फूलों की ओर झुक गया। पहले कुछ झिझका किन्तु थोड़ी देर बाद बेल को पैरों तले रौंदता हुआ काफी अन्दर तक घुस गया और अच्छे-अच्छे दस-पन्द्रह फूल तोड़ लिए।

फूलों को सूँघना ही चाहता था कि हवलदार न जाने कहाँ से आ टपका, 'क्यों भाई? फूलों की सुगन्ध कैसी है?'

'अच्छी है!' मैंने छोटा-सा उत्तर दिया।

'अच्छी है तभी लगाये हैं। किन्तु इतना नहीं सोचा कि इतनी ऊँचाई पर इस बेल लगानेवाले को कितनी मेहनत करनी पड़ती होगी!' आगे उसने केवल इतना ही कहा, 'आखिर कॉलेज में पढ़ते हो—थोड़ी समझ रखो।'

हवलदार मुझ पर स्नेह रखता था। फिर भी वह सब-कुछ कह गया। मैंने फूल वापस बेल पर फेंक दिए।

दोपहर के बाद करीब तीन बजे वहाँ से कूच करने लगे। गढ़ के पिछवाड़े से उतरने का आदेश हुआ। रास्ता तंग, पथरीला और टेढ़ा-मेढ़ा था।

सभी तेज गति से उतर रहे थे—एक-दूसरे से धक्का-मुक्की करते। हवलदार ने तेज आवाज में कहा, 'आहिस्ता और सावधानी से चलो। कंकरी महीन और फिसलने वाली है।'

परन्तु वहाँ कौन-सुनता था!

एक मोड़ बहुत ही तिरछा और ढालू था, साथ ही फिसलन। कुछ किस्मत वाले उसे भी उसी रफ्तार से पार कर गये।

फिर कुछ क्षणों में...ओह, उसे मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। मैं उससे कुछ ही कदम पीछे था।

एक लड़के का पैर फिसल चुका था और वह लुढ़कता हुआ कई फीट नीचे जा रहा था। हवलदार अपने स्थान से उसकी सीध में उछलकर चिल्लाया, 'मूर्खो! सावधान। एक लड़का गिर चुका है।'

लड़का पेट के बल एक पत्थर में अटककर दोहरा हो गया। अगर कहीं और जगह से टकरा जाता तो...हवलदार उसे सम्भालने को आगे बढ़ा ही था कि किसी की अनजाने में लगी ठोकर से एक पत्थर ऊपर से गड़...गड़... गड़ करता लुढ़क पड़ा। पत्थर गति पाकर सनसना उठा। हवलदार चौंककर

कश्मीर की यात्रा और हम

सुलतानसिंह गोदारा

किसी कवि ने दिल्ली की गर्मी के बारे में कहा है :

जून महीना बहे पसीना,
मुश्किल जीना,
भाड़ बनी है दिल्ली।

दिल्ली ही क्यों, मई-जून में हमारे श्री गंगानगर की गर्मी भी थर्मामीटर के पारे को अधिकतम ऊँचाई पर पहुँचा देती है। ऐसे में धरती के स्वर्ग कश्मीर की सैर और उसमें अपनों का साथ।

२६ मई की सुबह के छः बजे। एक हरे रंग की गाड़ी श्री गंगानगर से पंजाब जानेवाली सड़क पर निकली। रेडियो पर रामधुन आ रही थी, परन्तु कार में सवार छः यात्री अपनी ही धुन में थे, जिनकी आँखों में कश्मीर के झरने, पर्वत व बर्फ के रुपहले दृश्य अभी से प्रतिबिम्बित होने लगे। सूर्य देवता ने प्रखर किरणों से विदाई दी। दोपहर होते-होते अमृतसर आ गया। स्वर्ण-मंदिर व जलियाँवाला बाग, धर्म व शहादत के अमर प्रतीक, श्रद्धा से किस भारतीय का सिर नहीं झुक जाता? जनरल डायर की गोलियों के निशान अब तक शहर की छाती पर जड़े हैं, जो अंग्रेजों के अत्याचारों की कहानी स्वयं कहते हैं।

साँझ होने तक पंजाब पार कर लिया। मैदान पीछे रह गए, पहाड़ अगवानी करते-से लगे तथा सड़क घुमावदार बनने लगी। कस्बों के जगने के साथ ही हमने जम्मू शहर में प्रवेश किया। जम्मू, कश्मीर के स्वर्ग का प्रवेश-द्वार है। जम्मू से श्रीनगर की हवाई दूरी तो थोड़ी-सी है परन्तु सड़क पूरे एक दिन में पहुँचाती है। ऊधमपुर, कुद, बनिहाल आदि रास्ते के मुख्य ठहराव हैं। सड़क सामरिक महत्व की है। इसे नेहरू-सुरंग ने काफी छोटा कर दिया है जो लगभग दो मील लम्बी है। इसे पार करने पर सड़क कुछ झुकने लगी। बलखाते घुमावदार प्रकृति का पर्दा उठा और कश्मीर को अपनी आँखों के सामने पाया।

भी है। फूलों के प्रेमियों तथा पिकनिक के लिए यह आदर्श जगह है।

श्रीनगर के बाहर हमारा सबसे बड़ा आकर्षण गुलमर्ग था, जो वहाँ से पच्चीस मील दूर है। गुलमर्ग जानेवाली सड़क सुन्दर तो थी ही, परिचित भी लगी क्योंकि वह बहुत-सी आधुनिक फिल्मों के दृश्य में आती है। पहले टनमर्ग आता है जहाँ से गुलमर्ग की चढ़ाई तीन मील है। लोग घोड़ों पर भी जा रहे थे, परन्तु घोड़ों पर जाने से जवानी को लाज लग जाती। गुलमर्ग पहुँचते ही प्राकृतिक सौन्दर्य ने सारी थकान भुला दी। नीचे घास के मैदान, ऊपर दूर बर्फ के पहाड़, पास से गुजरते रंगीले तबीयत के यात्री। सभी को प्रकृति ने जैसे अपने रंग में रँग लिया। क्या जीवन इसी तरह नहीं गुजारा जा सकता? स्वर्ग में इससे बढ़कर क्या होगा? सर्दियों के खेलों के लिए गुलमर्ग एकमात्र जगह है। यहाँ होटल व डाक बंगले भी हैं। खिलनमर्ग पहुँचने में एक घण्टा और लगा। अब हम समुद्रतल से १०,००० फीट से अधिक ऊँचाई पर थे तथा मखमली बर्फ हमारे पैर चूम रही थी। चाय का सामान हम साथ ले गए थे। अत: थकान मिटाकर, ऊँचाई पर जाकर बर्फ पर फिसले, लुढ़के व कैमरे को खुली छूट दे दी। सूर्य झुकने लगा और हमें वापस आना ही था।

सोनमर्ग एक सुन्दर वादी है जो श्रीनगर से ५१ मील उत्तर-पूर्व में है तथा ९,००० फीट ऊँची है। कहते हैं। यहाँ कहीं पर एक कुआँ है जिसका पानी किसी भी वस्तु को सोना बना सकता है। रास्ता सिंध नदी के साथ जाता है। सोनमर्ग बहुत अच्छा कैम्पिंग ग्राउण्ड है। इसे एक चश्मे, पास के बर्फीले मैदान के नाले व ग्लेशियरों से पानी मिलता है। इस वादी में डॉ० मीड की सेवा-भावना की सुगंध व्यापक है जिन्होंने यहाँ के निवासियों के लिए रोगों से लड़ाई की तथा उनका दिल जीत लिया।

हमारे अब तक के पर्यटन का केन्द्र श्रीनगर ही था परन्तु अब मंजिल पहलगाम थी अत: श्रीनगर को अलविदा कहना ही पड़ा। रास्ते में नजदीक ही पांड्रेठन के मन्दिर व राजदूर तथा अवन्तीपुर में शिवजी के मन्दिर हैं जो नवीं सदी की देन हैं। मार्तण्ड का मन्दिर ललितादित्य ने बनवाया था। अनन्तनाग कश्मीर के प्रसिद्ध नागों में से है। नाग का अर्थ झरना या चश्मा है। मटन या मट्टन में श्राद्ध किये जाते हैं। यहाँ अमरनाथ के पण्डे रहते हैं। अच्छाबल बाग शहजादी जहाँआरा की देन है। समीप ही कोकरनाग है जहाँ का गन्धक के पानी का झरना रोग-निवारक है।

जब २ जून का सूर्य पहाड़ों की ओट लेकर छिपने ही वाला था कि हमारी टोली पहलगाम पहुँची। यूँ तो प्रकृति ने सारे कश्मीर पर अपना वैभव लुटाया है, परन्तु अमरनाथ के मार्ग में पड़नेवाले पहलगाम की शोभा तो अद्वितीय है। यहाँ ठहरने के लिए होटल व तम्बू की व्यवस्था है। ७,००० फीट

बारह दिन का भ्रमण और पाँच पड़ाव

□

सुलतानसिंह गोदारा

सुबह होती है, शाम होती है जिन्दगी यूँ ही तमाम होती है।
बेहतर है जिन्दगी तमाम होने से पहले ही तमन्नाएँ पूरी कर ली जाएँ। कई बार तमन्नाएँ, कुछ पुरानी साधें अनायास ही पूरी हो जाती हैं। ऐसा ही कुछ हमारी उस भ्रमण-यात्रा मे हुआ जो अक्टूबर मे दशहरे की छुट्टियों मे श्री महावीरसिंह जी के नेतृत्व मे हुई।

यात्रा का प्रथम पड़ाव कल्पना-नगरी चण्डीगढ मे था, जहाँ हम १२ अक्टूबर को सुबह पहुँचे। चण्डीगढ़ भारत के बडे शहरों से कई अर्थों मे भिन्न लगा। यहाँ वह भीड़ नही कि दम घुटने लगे। वह माहौल नही कि यात्री अपने-आपको अजनबी महसूस करे। यद्यपि उन दिनो चण्डीगढ राजनीतिक हलचलो का केन्द्र था परन्तु चण्डीगढ़ की चौड़ी सड़कें, व्यवस्थित बाजार, शान्त कृत्रिम झील और सुन्दर परिवहन-व्यवस्था सभी अपने नागरिको के प्रति वफादार थी।

चण्डीगढ भारत का एकमात्र योजनाबद्ध नगर है। फ्रांसिसी शिल्पकार कार्बूजिए नगर को जीवित प्राणी मानते थे। नगर के सिर पर सचिवालय, विधान सभा व उच्च न्यायालय स्थित हैं। मध्य मे प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है। सबसे नीचे औद्योगिक केन्द्र है। नगर को तीस सैक्टरो मे बाँटा गया है जो प्रत्येक आधा मील चौड़ा और पौन मील लम्बा है। प्रत्येक सैक्टर पूर्णतः आत्मनिर्भर है। शहर का प्रमुख आकर्षण सुखना झील है। इसमे सायं के समय नौका-विहार किया जा सकता है। सैक्टरो मे उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय, पोलीटेक्नीक, आर्ट्स कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज, चिकित्सा संस्थान आदि हैं। सैक्टर न० अठारह मे टैगोर थियेटर के निर्माण पर नौ लाख रुपया व्यय हुआ है।

यह कैसे हो सकता था कि चण्डीगढ आएँ और पिंजोर बाग और हिन्दुस्तान मशीनरी टूल्स का कारखाना न देखें। जहाँ पिंजोर मुगलकालीन ऐश्वर्य की झाँकी प्रस्तुत करता है वहाँ हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का कारखाना अपनी

बारह दिन का भ्रमण और पाँच पड़ाव

सुलतानसिंह गोदारा

सुबह होती है, शाम होती है जिन्दगी यूं ही तमाम होती है।

बेहतर है जिन्दगी तमाम होने से पहले ही तमन्नाएँ पूरी कर ली जाएँ। कई बार तमन्नाएँ, कुछ पुरानी साधें अनायास ही पूरी हो जाती हैं। ऐसा ही कुछ हमारी उस भ्रमण-यात्रा में हुआ जो अक्टूबर में दशहरे की छुट्टियों में श्री महावीरसिंह जी के नेतृत्व में हुई।

यात्रा का प्रथम पड़ाव कल्पना-नगरी चण्डीगढ़ में था, जहाँ हम १२ अक्टूबर को सुबह पहुँचे। चण्डीगढ़ भारत के बड़े शहरों से कई अर्थों में भिन्न लगा। यहाँ वह भीड़ नहीं कि दम घुटने लगे। वह माहौल नहीं कि यात्री अपने-आपको अजनबी महसूस करे। यद्यपि उन दिनों चण्डीगढ़ राजनीतिक हलचलों का केन्द्र था परन्तु चण्डीगढ़ की चौड़ी सड़कें, व्यवस्थित बाजार, शान्त कृत्रिम झील और सुन्दर परिवहन-व्यवस्था सभी अपने नागरिकों के प्रति वफादार थी।

चण्डीगढ़ भारत का एकमात्र योजनाबद्ध नगर है। फ्रांसिसी शिल्पकार कार्बूजिए नगर को जीवित प्राणी मानते थे। नगर के सिर पर सचिवालय, विधान सभा व उच्च न्यायालय स्थित हैं। मध्य में प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है। सबसे नीचे औद्योगिक केन्द्र है। नगर को तीस सैक्टरों में बाँटा गया है जो प्रत्येक आधा मील चौड़ा और पौन मील लम्बा है। प्रत्येक सैक्टर पूर्णत: आत्मनिर्भर है। शहर का प्रमुख आकर्षण सुखना झील है। इसमें सायं के समय नौका-विहार किया जा सकता है। सैक्टरों में उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय, पोलीटेक्नीक, आर्ट्स कॉलिज, इंजीनियरिंग कॉलेज, चिकित्सा संस्थान आदि हैं। सैक्टर न० अठारह में टैगोर थियेटर के निर्माण पर नौ लाख रुपया व्यय हुआ है।

यह कैसे हो सकता था कि चण्डीगढ़ आएँ और पिंजोर बाग और हिन्दुस्तान मशीनरी टूल्स का कारखाना न देखें। जहाँ पिंजोर मुगलकालीन ऐश्वर्य की झाँकी प्रस्तुत करता है वहाँ हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का कारखाना अपनी

ऊँची इस घाटी को लिद्दर घाटी कहते हैं। यहां शेषनाग व लिद्दर नदियों का संगम-स्थान है।

पहलगाम से चन्दनवाड़ी का रास्ता। हम थे, तेज व ठण्डी हवा थी और थे साथ-साथ उछल-उछलकर बहनेवाला शेषनाग नाला व पग-पग पर छितराई जाने वाली दूध-सी सफेद फुआर। एक ओर बर्फ से ढकी चोटियां चमक रही थीं और उनमें से छोटे-छोटे ग्लेशियर हम से मिलने को नीचे को रेंग रहे थे। इन्हें देखकर कभी पढ़ी हुई अंग्रेजी कविता की पंक्तियां याद आ गईं जिनका भावार्थ कुछ इस प्रकार है—

"इन पर्वत-शिखरों की छाया मेरे अन्तपट पर पड़ रही है। इनकी भीषण दुर्गमता गुलाबी सांझ से रंजित है। फिर भी मेरे प्राण इनके लिए अकुलाते हैं। वे शांत व श्वेत हिम के प्यासे हैं। यह कैसी पागल ममता है?"

इधर सूर्य सिर पर और हम चन्दनवाड़ी की बर्फ पर। उस बर्फ के नीचे से शेषनाग नदी नैसर्गिक पुल बनाकर तीव्र गति से बहती है। पहलगाम आनेवाले पर्यटक इस पुल को अवश्य देखने आते हैं। यहीं से अमरनाथ का रास्ता है जो उस समय बन्द था। सायं तक कुछ पैदल तथा कुछ मोटर पर मनबहलाव करते हुए हम होटल पहुँच गए।

रात को वर्षा हो गयी और घाटी में बर्फ भी पड़ी। अभ्यस्त न होने के कारण हम सभी को जुकाम हो गया। सुबह ही बिस्तर बँध गये, कार चल पड़ी तथा लिद्दर घाटी का मनभावन शोर पीछे रह गया। जम्मू शहर ने फिर शरण दी। दूसरे दिन कश्मीर के पहाड़ यादगार बन गए। नदियों की जगह पंजाब की नहरों ने ले ली। जैसे स्वप्न टूट गया, माथे पर हाथ रखा तो ठण्डे झरने का पानी नहीं बल्कि पसीना बह रहा था। इस यान्त्रिक युग का प्राणी जो कि सदैव कृत्रिम आवरण में रहता है, थोड़े समय के लिए भी यहां आए तो सारे सांसारिक दुख व बन्धन भूल जाता है।

बारह दिन का भ्रमण और पाँच पड़ाव

□

सुलतानसिंह गोदारा

सुबह होती है, शाम होती है जिन्दगी यूँ ही तमाम होती है।
बेहतर है जिन्दगी तमाम होने से पहले ही तमन्नाएँ पूरी कर ली जाएँ। कई बार तमन्नाएँ, कुछ पुरानी साधें अनायास ही पूरी हो जाती हैं। ऐसा ही कुछ हमारी उस भ्रमण-यात्रा में हुआ जो अक्टूबर में दशहरे की छुट्टियों में श्री महावीरसिंह जी के नेतृत्व में हुई।

यात्रा का प्रथम पड़ाव कल्पना-नगरी चण्डीगढ़ में था, जहाँ हम १२ अक्टूबर को सुबह पहुँचे। चण्डीगढ़ भारत के बड़े शहरों से कई अर्थों में भिन्न लगा। यहाँ वह भीड़ नहीं कि दम घुटने लगे। वह माहौल नहीं कि यात्री अपने-आपको अजनबी महसूस करे। यद्यपि उन दिनों चण्डीगढ़ राजनीतिक हलचलों का केन्द्र था परन्तु चण्डीगढ़ की चौड़ी सड़कें, व्यवस्थित बाजार, शान्त कृत्रिम झील और सुन्दर परिवहन-व्यवस्था सभी अपने नागरिकों के प्रति वफादार थी।

चण्डीगढ़ भारत का एकमात्र योजनाबद्ध नगर है। फ्रांसिसी शिल्पकार कार्बूजिए नगर को जीवित प्राणी मानते थे। नगर के सिर पर सचिवालय, विधान सभा व उच्च न्यायालय स्थित हैं। मध्य में प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है। सबसे नीचे औद्योगिक केन्द्र है। नगर को तीस सैक्टरों में बाँटा गया है जो प्रत्येक आधा मील चौड़ा और पौन मील लम्बा है। प्रत्येक सैक्टर पूर्णत: आत्मनिर्भर है। शहर का प्रमुख आकर्षण सुखना झील है। इसमें शाम के समय नौका-विहार किया जा सकता है। सैक्टरों में उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय, पोलीटेक्नीक, आर्ट्स कॉलिज, इन्जीनियरिंग कॉलिज, चिकित्सा संस्थान आदि हैं। सैक्टर न० अठारह में टैगोर थियेटर के निर्माण पर नौ लाख रुपया व्यय हुआ है।

यह कैसे हो सकता था कि चण्डीगढ़ आएँ और पिंजोर बाग और हिन्दुस्तान मशीनरी टूल्स का कारखाना न देखें। जहाँ पिंजोर मुग़लकालीन ऐश्वर्य की झाँकी प्रस्तुत करता है वहाँ हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का कारखाना अपनी

विशालता व कुशलता से भारत के भविष्य के प्रति आश्वस्त करता हुआ प्रतीत हुआ।

११ अक्टूबर की शाम को हम नांगल जानेवाली गाड़ी में थे जो हमारी यात्रा का दूसरा पड़ाव था। 'ये नए भारत के तीर्थ हैं, इन्हें प्रणाम करो।' श्री नेहरू के ये शब्द हमारे मन में थे। अब हम वहाँ वैज्ञानिक ऋषियों के दर्शनों की आशा में पहुंचे थे। नांगल के कारखानों की मशीनों की गति सतलज के पानी के बहाव की तरह कभी मन्द नहीं होती। प्रकृति को बांध रखने से ही उस पर विजय नहीं पायी जा सकती। उसके साथ निरन्तर जूझना भी पड़ता है। भाखरा बांध सन् १९६३ में पूरा हुआ तथा नांगल उसके भी पहले। भाखरा बांध को पहली बार देखकर रोमांच और दहशत पैदा हो जाती है। इसमें तेरह मंजिलों पर ऐसी तेरह गैलरियाँ हैं, जिनमें लिफ्ट द्वारा प्रवेश कर निरीक्षक व कारीगर भीतर बिखरी अनेक उपगैलरियों में फैल जाते हैं। पर्यटकों के आकर्षण के लिए बांध के दोनों ओर साज-सज्जा का काम चल रहा था। बाएँ किनारे पर बने एशिया के सबसे बड़े हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर प्लाण्ट के पाँच भीमकाय चक्के बारी-बारी से एक सेकण्ड में ६६ की गति में घूम रहे हैं। इनमें डेढ़ लाख हार्स पावर का प्रत्येक जेनरेटर ९०,००० किलोवाट विद्युत उत्पन्न करता है। दाएँ किनारे पर ठीक वैसा ही एक पावर प्लाण्ट और बन रहा है जिसका एक जेनरेटर चालू हो चुका था और शेष चार बन रहे थे।

पहाड़ की ढलान पर ऊपर से नीचे तक मशीनें, तार, कंकरीट व पत्थर बिखरे पड़े हैं। बीच-बीच में काम में जुटे हैं वे लोग जो गवाह हैं उस सूचना के जो मुख्यद्वार पर ही लिखी हुई थी—"कृपया सावधानी से काम कीजिए और अपने घरों को सुरक्षित लौटिए। आपके परिवारों की खुशी और भविष्य आपके सुरक्षित लौटने पर ही निर्भर है।"

नांगल डैम हम रात में पहुंचे। उसके आने की सड़क से हम चाहें तो रासायनिक खाद के कारखाने तक या उसकी कॉलोनी 'नया नांगल' तक जा सकते हैं। भाखरा व नांगल के बीच में नदी को झील बना दिया गया है। यहाँ 'सतलुज सदन' में इसी झील के किनारे पर बने एक कमरे में बैठकर चीन के प्रधानमंत्री श्री चाऊ-एन-लाई ने श्री नेहरू से दोनों देशों की मित्रता के लिए हाथ मिलाया था। नांगल बांध पर भाखरा बांध जैसी दहशत नहीं होती।

आनन्दपुर साहिब हम १५ अक्टूबर को सुबह बस द्वारा पहुंचे। गुरुद्वारे की प्राचीनता तथा विशालता के बारे में पूछताछ की और गुरुग्रन्थ साहिब के सम्मुख शीश झुकाया। वहाँ से नैना देवी का मन्दिर पहाड़ी पर टिका हुआ नजदीक ही दिखाई दे रहा था, पर उस तक पहुंचने की चढ़ाई ने अध्यापक [illegible] तथा साथी यात्रियों का दम-खम तोल लिया और मन्दिर से वापस आना

तो वबाले-जान बन गया। खैर, हिमाचल प्रदेश की बस हमें वहाँ मिल गई। बस का किराया जहाँ दिल दहलानेवाला था, उससे अधिक वह रास्ता था जिससे हम करतारपुर पहुँचे। रास्ते में ही हमने विशाल गंगवाल पावर हाउस देख लिया, जो भारत की बिजली का वितरण केन्द्र है।

दिल्ली, जो भारत का दिल है, दिल्ली जो भारत की राजधानी है, १६ अक्तूबर दोपहर को वह भी आ गई। यह विशाल ऐतिहासिक नगरी सदियों से उतार-चढ़ाव देखती आयी है। दिल्ली पाण्डवों की राजधानी रही है। पृथ्वीराज चौहान की आन-बान की यह गवाह है। नादिरशाह और तैमूरलंग ने इसे लूटा है। मुगल सम्राटों ने इसे सँवारा है। दिल्ली बार-बार उजड़ी है, फिर बसने के लिए। राजमार्ग व जनपथ तथा अन्य मुख्य मार्गों पर दौड़ती हुई परिवहन की बसें, टैक्सी व कारें, उनमें बचता हुआ राजधानी का आम नागरिक, चाँदनी चौक व कनॉट प्लेस की भीड़ का अधिक घनत्व। ये सभी ऐसी विशेषताएँ हैं जो हमने दिल्ली में आने से पहले सुन रखी थीं। स्पष्ट है कि दिल्ली एक नहीं बल्कि दो शहर हैं। पुरानी दिल्ली जो प्राचीन इमारतों व ऐतिहासिक स्थानों का संग्रहालय है। लालकिला में दीवाने-खास व दीवाने-आम की स्थापत्य-कला दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त जामा मस्जिद, शीशगंज गुरुद्वारा, बिड़ला मन्दिर तथा आकाश को चूमती को छूती हुई कुतुबमीनार जिसमें सटी हुई अशोक महान की लोहे की लाट—पुरानी दिल्ली के आकर्षण हैं। दूसरा शहर है—नई दिल्ली जिसमें भारतीयों के रूप में अंग्रेज लोग रहते हैं जो अंग्रेजी भाषा बोलते हैं, अंग्रेजी बाना पहनते हैं, अंग्रेजों की दी हुई आजादी भोगते हैं। राष्ट्र का शासन कार्य यहीं से चलता है। संसद भवन, राष्ट्रपति भवन, आकाशवाणी, लोकमूर्ति, इण्डिया गेट, सुपर बाजार का अवलोकन हमने एक ही दिन में कर लिया। दिल्ली में शांति मिली तो यमुना किनारे राजघाट, शान्तिवन तथा विजयघाट के दर्शन करके।

चौथा पड़ाव डाला गया ऐतिहासिक नगरी आगरा में। आगरा का नाम सुनते ही ताज की परछाइयाँ आँखों के आगे नाचने लगती हैं। देशी-विदेशी पर्यटकों का संगम स्थल आगरा। शाहजहाँ की मशहूर नगरी आगरा। ताजमहल देखकर न जाने कितने विचार दर्शक के मन में उठते हैं! हम में से कोई इसे मुगल स्थापत्य कला का शानदार नमूना, कोई सम्राट द्वारा अपनी बेगम मुमताज की याद में बनाया हुआ शानदार मकबरा तथा कोई कोसता हुआ यह कहता था कि शहंशाह ने एक हसीन ताज बनवाकर गरीबों की मुहब्बत का मजाक उड़ाया है।' लेकिन एक बात स्पष्ट थी कि इस प्रकार दिल पर असर करनेवाली इमारत हमने अब तक नहीं देखी थी। आगरा के किले के बारे में छात्रों को पता थी कि यह दिल्ली के लाल किले से आकार व सुन्दरता की दृष्टि से

अच्छा था। इसी किले में शाहजहाँ ने कैदी के रूप में अपने दिन काटे थे और इसी के एक कोने मे बैठा हुआ दूर अपनी बेगम के मजार ताज को देखकर रोया करता था। आगरा में सतनामियों का एक मन्दिर दयालबाग में निर्माणाधीन है। इसके निर्माण व व्यय के बारे मे अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। दूसरा सारा दिन फतेहपुर सीकरी के लिए था। फतेहपुर सीकरी के साथ महान सम्राट अकबर का नाम जुड़ा है। इसमें रानियों के महल—विशेषकर पचमहल, नवरत्नों के महल, विशाल प्रांगण तथा दरबार, चिश्ती की मजार दर्शनीय हैं। बुलद दरवाजा वास्तव में बुलंद था। सीकरी के खण्डहर न जाने कितना इतिहास अपने में समेटे हैं।

२० अक्तूबर की शाम को जयपुर पहुँचे, जो हमारी यात्रा का अन्तिम व पाँचवाँ पड़ाव था। गुलाबी नगरी जयपुर! राजस्थान की राजधानी! जयपुर के सुन्दर बाजार, चौड़ी सड़कें तथा ऐतिहासिक स्थान यात्रा के प्रारम्भ से ही हमारी बातचीत का विषय रहे थे। जयपुर ने हमें निराश नहीं किया। सवाई राजा जयसिंह स्वयं एक कुशल इंजीनियर, ज्योतिषी तथा प्रशासक थे। जंतर-मंतर में अनेक प्रकार के ज्योतिष-सम्बन्धी उपकरण थे जिसमें से कुछ के नाम राम यन्त्र, कृष्ण यन्त्र, चन्द्र यन्त्र आदि थे। राजमहलों में से कुछ में संग्रहालय है जिनमें प्राचीन हथियार, कला के नमूने तथा मूर्तियाँ एकत्रित हैं। हवामहल, विधानसभा भवन, अजायबघर, चिड़ियाघर, राम-निवास बाग आदि शहर के अन्य दर्शनीय स्थल हैं। आमेर का किला जो जयपुर से थोड़ी दूर पहाड़ी पर है, प्राचीन समय में राजधानी थी। किले में राजा-रानियों के महल—विशेषकर शीश महल व दरबार काफी सुन्दर हैं। जयपुर से थोड़ी दूर पर गल्ताजी एक पवित्र स्थान है।

२४ अक्तूबर की दोपहर पहुँच गए मंजिल पर। भ्रमण-यात्रा पूरी हो गई। प्रश्न किए जा सकते हैं कि इस भ्रमण में हमने क्या देखा, क्या सीखा? ऐतिहासिक स्थान, आधुनिक शहर, वैज्ञानिक स्थल, विशाल बाँध। ये भारत के आधुनिक तीर्थ हैं जो हमें विज्ञान, इंजीनियरिंग, विद्युत का उत्पादन व वितरण, शिक्षा के आधुनिक व उपयोगी साधन तथा चिकित्सा सम्बन्धी संस्थान के बारे में जानकारी देते हैं।

अतः यात्रा करने-मात्र चाहे वह किसी भी उद्देश्य से की गई हो बड़ी उपयोगी है। विभिन्न बोली बोलनेवालों से सम्पर्क हुआ। परस्पर आत्मीयता बढ़ी। पहाड़, नदियाँ, मैदान, बाँध, वन, नगर सभी ने हमें आकर्षित किया। प्रत्येक ने कुछ न कुछ ज्ञान-वृद्धि की। अतः जिन उद्देश्यों को लेकर हमने भ्रमण का आयोजन किया था वे काफी सीमा तक पूरे हो गए।

बदरी केदार से मसूरी

राजेन्द्रप्रसाद सिंह डांगी

कल-कल करती हुई प्रवाहित पवित्र नदियाँ, गगन को स्पर्श करती हुई पर्वत शिखाएँ, पाताल को चीरती हुई गहरी घाटियाँ, पैदल चलते हुए अनेक राहगीर, सर्वत्र हरी मखमली सेज—देखते ही मन-मयूर नाच उठता है, जी बांसो उछल पड़ता है, इच्छा होती है कि नेत्रो को उन अलौकिक दृश्यों मे ही सदा के लिए जमा दे ताकि वे तृप्त रह सकें। सबके मन मे एक नया उत्साह, नई उमग थी, ऐसे प्राकृतिक दृश्यो के आनन्द-लाभ होने की।

२४ घंटो की लगातार रेल-यात्रा के बाद शाहपुरा (भीलवाडा) से निकला २२ स्काउटरों, गाइडरों का दल १० जून को प्रात भारत की राजधानी दिल्ली पहुँचा, जहाँ के सभी दर्शनीय स्थान लालकिला, कुतुबमीनार, बिरला मन्दिर, नेताओं की समाधियाँ, इंडियागेट, तीनमूर्ति भवन, अजायबघर आदि देखकर दूसरे दिन प्रात. मसूरी एक्सप्रेस से ऋषिकेश पहुँचे। रेलवे स्टेशन पर ही महाराज भरत मन्दिर इंटर कॉलेज के एक शिक्षक ने हमारा स्वागत किया और शहर के मध्य स्थित कॉलेज के प्राचीन भवन मे आवास हेतु ले गये। द्विदिवसीय लम्बी यात्रा के बाद वहाँ स्वर्गाश्रम और गीताभवन के दर्शन तथा गंगा के स्नान बड़े सुखद प्रतीत हुए। समीप ही 'लक्ष्मण झूला' देखकर 'पायोनियरिंग प्रोजेक्ट्स' की स्मृति हो आयी। सध्या को हमने केदारनाथ जाने हेतु सोनप्रयाग के टिकट खरीदे। पर्यटन विकास सहकारी सघ ने टिकट देने मे बड़ी मदद की और सोनप्रयाग व बद्रीनाथ के स्टेशन प्रभारी के नाम हमें पत्र दिये, जिससे हमे वहाँ टिकट आसानी से अविलम्ब मिल सके। उनका सहयोग सराहनीय है।

जैसे स्वर्ग के द्वार खुल रहे हो, ऋषिकेश से प्रथम बसों का द्वार प्रातः साढ़े छह बजे खुलता है, उसका लाभ उठाया गया। दिन-भर बस की यात्रा। सड़कें तग मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा चक्करदार। स्काउटर्स व गाइडर्स इस मार्ग की कठिनाई को सहन न कर सके, इससे कुछ दूरी तक बहुतों की तबीयत खराब

हो गई। आगे चलते-चलते अभ्यस्त हो गये। मार्ग में प्राकृतिक घटा का अवलोकन होता रहा। ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को काटकर सर्पाकार मार्ग देखते ही बनता था। अठावन मील की यात्रा कर हम देवप्रयाग पहुँचे। यह शुभ्र-सलिला भागीरथी और अलकनन्दा का रमणीक संगम-स्थल है। आगे हम नंदप्रयाग होते हुए रुद्रप्रयाग पहुँचे। तीसरे दिन शाम को पाँच बजे बजे हम सोनप्रयाग पहुँचे जहाँ पर बसों का मार्ग समाप्त हो जाता है। रुद्रप्रयाग से केदारनाथ और बद्रीनाथ के लिए मार्ग अलग-अलग जाते हैं। सोनप्रयाग से साढ़े ग्यारह मील पैदल चलकर ही केदारनाथ के दर्शन कर पाते हैं। बस-मार्ग आगे-से-आगे बनाकर स्वर्ग में पहुँचने की कठिनता को समाप्त करने का राज्य सरकार का प्रयास जारी है। उसी समय हम पैदल रवाना हुए।

अपूर्व जोश और हिम्मत, लालसा केदारनाथ के दर्शनों की, इच्छा चाँदी से पहाड़ों को देखने की। दो मील की चढ़ाई चढ़ने के बाद हम रात्रि को सात बजे गौरीकुण्ड पहुंचे। यहाँ एक ओर अलकनन्दा बहुत वेग से बहती है जिसके जल में हाथ देने से ऐंठन होने लगती है। इससे ऊपर की ओर दो जलकुण्ड हैं। एक पीला है किन्तु विशेष गर्म नहीं, परन्तु दूसरा गर्म जल का है। ईश्वर की कृपा है कि ६५०० फीट की ऊंचाईवाले ऐसे ठण्डे स्थान पर इस प्रकार का गर्म औटता हुआ जल मिलता है, जिसमें नहाते ही यात्रियों की सारी थकान दूर हो जाती है। यहाँ के निवासी बड़े भले लगे, निवास व भोजन व्यवस्था उत्तम रही। यहाँ भोजनालय है, छोटा-सा बाजार है, एक धर्मशाला भी है, जिसमें साधु-सन्त ठहरते हैं। रात्रि-विश्राम यहीं किया।

दूसरे दिन प्रातः ही रवाना हुए, वह दुर्गम तथा सीधी चढ़ाई चढ़ने के लिए। विकट मार्ग, सँकरे व हिलते पुल, मगर 'जै केदारनाथ' का उच्चारण करते-करते छह मील का मार्ग तै कर रामबाड़ा पहुँचे। यह स्थान बहुत ठंडा है। समीप ही एक जल-प्रपात है। कुछ विश्राम के बाद फिर चल पड़े, धर्म व प्रकृति के प्यासे। नंगे पहाड़ों को, जिन पर बर्फ चांदी-सी मढ़ी हुई, देखते-देखते मन नहीं भरता था। साढ़े तीन मील की भयंकर चढ़ाई के बाद निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुंचे। हममें से कुछ ने मंदाकिनी में स्नान किया। मौसम बड़ा ठंडा था, कँपकँपी छूटती थी। समुद्रतल से ११७८५ फुट ऊँचा केदारनाथ का मंदिर मंदाकिनी की घाटी के सिरे पर स्थित है। बड़ा ही शानदार भवन है। अदृश्य शिव का यह मन्दिर है। भगवान् सदाशिव के बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है। कहा जाता है कि पाण्डवों ने इसी स्थान पर देह-त्याग किया था। इसी स्थान से थोड़ी दूर पर हिमनदी बहती है जो मंदाकिनी का उद्गम-स्थल है। यात्री हिमनदी पर से आते-जाते थे। प्रति वर्ष मई के प्रारम्भ में मन्दिर

रमणीक स्थान है। चारों ओर प्रकृति निखर रही है। यात्रियों के मन को अनायास ही मोह लेती है। पूजन के लिए यहाँ पर सवा रुपये की थाली मिलती है। भगवान् के खूब शुद्ध घी की मालिश की जाती है और स्पर्श किया जाता है। दिन-भर में मनों घी भगवान् को चढ़ाया जाता है। यहाँ पर अखण्ड ज्योति प्रज्वलित है।

पूजन करके हम रवाना हो गये, वापस दूसरे धाम के लिए। मौसम अति शीत होने से रात्रि-विश्राम वहाँ न कर रात्रि को गौरीकुण्ड में आकर किया। एक ही दिन में तेरह मील की पैदल यात्रा, थकान सिर चढ़ आयी। मगर तप्त कुण्ड के गर्म पानी में पैर धोने से कुछ राहत मिली।

चौदह जून को प्रातः हम सोनप्रयाग आकर दिन के ग्यारह बजे सवार हुए बसों में, दूसरे पावन धाम बद्रीविशाल के दर्शनों की इच्छा के लिए। एकदम बोल उठे—'जै केदार, जै बद्रीविशाल'। पीपलकोटी होते हुए हम शाम को जोशीमठ पहुँचे। यहाँ बिरला विश्राम-गृह बहुत अच्छा स्थान है। ठहरने की पूर्ण सुविधा है। जगद्गुरु शंकराचार्य के चारों मठों में से एक मठ यहीं पर है। शीत-काल में श्री बद्रीनाथ की चलमूर्ति इसी मन्दिर में स्थापित कर छः माह तक उसकी पूजा होती है। छोटी-सी पहाड़ी बस्ती है। अच्छा भोजन प्राप्त हो जाता है। दूसरे दिन प्रात. रवाना हुए—बद्रीनाथ के लिए। नियत समय पर गाड़ियों की रवानगी का समय है। मिलिटरी ही इस सड़क की देखभाल करती है। जोशीमठ से दो मील पर विष्णुप्रयाग है। यह इस क्षेत्र का पाँचवाँ और अंतिम प्रयाग(संगम) है। यहाँ के दायीं ओर के पर्वत को नर और बायीं ओर के पर्वत को नारायण कहते हैं। धौली गंगा का प्रवाह बड़ा तेज है। मार्ग में उतार-चढ़ाव का तो कहना ही क्या, जैसे अब गिरे गड्ढे में! बहुत ही धैर्य से मोटर चलाने की आवश्यकता है। हम प्रात: नौ बजे बद्रीनाथ जा पहुँचे। १०,५०० फीट ऊँचे बर्फीले पर्वतों ने हमारा स्वागत किया। बद्रीनाथ पर्वतों की सबसे ऊँची चोटी २३,२०० फीट है। यहाँ पर काफी खुला मैदान है, जिसके एक ओर अलकनन्दा बहती है। बद्रीनाथ से उत्तर की ओर आठ मील की दूरी पर अलकनन्दा के मोड़ के साथ-साथ माना तक सड़क जाती है—जहाँ से चीन की सीमा आरम्भ हो जाती है।

बद्रीनाथ में तीन मुख्य स्थान हैं। बद्रीनाथ का मन्दिर, गर्म पानी का सोताऔर ब्रह्म कपाली का चबूतरा। तप्तकुंड में स्नान के बाद बद्रीविशाल के दर्शन किये, प्रसाद चढ़ाया। प्रसाद में चने की दाल मुख्य है। शाम को आरती देखी, लगभग आधा घंटे तक बड़ी लय के साथ आरती हुई। आनन्द ही आनन्द। जो कुछ भेंट चढ़ावा आता है वह सरकार को ही मिलता है। रात्रि एक धर्मशाला में व्यतीत की। प्रातः पुन. तप्तकुंडों में स्नान करके चल दिए

बसो में। दिनभर की यात्रा के बाद शाम को श्रीनगर पहुंचे। यहां पहुंचते-पहुंचते तो इतनी गर्मी होने लगी कि शरीर पर एक कपड़ा भी अच्छा नहीं लगता था। बस स्टैण्ड के पास से ही एक गली जाती है, उसमें कुछ दूर आगे चलकर शिवजी का बहुत सुन्दर मन्दिर है। इस मन्दिर से एक मील की दूरी पर अलकनन्दा बहती है। संध्या को इसके पवित्र जल में स्नान कर थकान दूर की।

शनिवार को प्रात. श्रीनगर से रवाना होकर लक्ष्मण झूला होते हुए दिन के ग्यारह बजे ऋषिकेश पहुंचे। गंगा में स्नान किया। अलकनन्दा १२२ मील के मार्ग को तै करती हुई देवप्रयाग में भागीरथी में मिल जाती है। दोनों का नाम मिलकर यहां से गंगा हो जाता है। गंगा मैदान में पहुंचने से पहले ४७ मील का मार्ग ऋषिकेश तक तै करती है। बद्री और केदार की लम्बी यात्रा के बाद यहां विश्राम करना अत्यन्त सुखकर प्रतीत हुआ। दूसरे दिन प्रातः हम ट्रेन द्वारा हरिद्वार गये। स्टेशन के बाहर ही धर्मशाला में सामान रखकर दो-दो रुपयों में तांगा करके निकले, वहां के दर्शनीय स्थान देखने। कनखल-तीन मील दूर, जहां कि दक्ष प्रजापति ने प्रसिद्ध यज्ञ किया था और भगवान शंकर की अर्द्धांगिनी सतीजी ने अपने पिताजी के अभद्र व्यवहार के कारण अपने-आपको योगाग्नि द्वारा भस्म कर दिया था। भीमगोडा, परमार्थ निकेतन, गीताभवन, सप्तऋषि मंदिर आदि के दर्शन कर शाम को हर की पैड़ी पर स्नान करके, गंगा मैया की आरती का आनन्द प्राप्त किया। सैकड़ों दीपशिखाओं वाला दीवट ताप से इतना गर्म हो जाता था कि पुजारी को बीच-बीच में उसके नीचे के भाग को पानी में डुबोकर शीतल करना पड़ता था। यह दृश्य भी देखने काबिल होता है।

प्रातः ही हरिद्वार से रवाना होकर हम देहरादून पहुंचे। वहां अग्रवाल धर्मशाला में हमारे ठहरने की अच्छी व्यवस्था थी। आठ मील दूर सहस्रधारा रमणीक स्थल है, जहां स्नान कर आनन्द किया। एक ही पहाड़ी से चारों ओर अनेक धाराएं बहना देखकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ी। अपराह्न में उत्तर प्रदेश राज्य भारत स्काउट्स व गाइड्स के उपप्रधान श्री नरेन्द्र-कुमार जैन से नरेन्द्र एण्ड कम्पनी (दून उद्योग) के कार्यालय में मिले। उन्होंने हमारा भावभीना स्वागत किया। दूसरे दिन प्रातः बस द्वारा भूलभुलैया मार्ग से ७,००० फुट की ऊंचाई पर मसूरी पहुंचे। वहां सनातन धर्म सभा में हमारे आवास की उत्तम व्यवस्था थी। मसूरी में हम चार दिन ठहरे। केम्प्टी फाल, गनहिल, लाल टीबा और म्यूनिसिपल पार्क देखे। विद्युत-संचालित ट्राली में बैठकर वायुयान का-सा आनन्द लिया। लाल टीबा सबसे ऊंची चोटी है वहां दूरबीन से एवरेस्ट चोटी देखी जाती है। माल रोड, लंढौर, कुलड़ी और

लाइब्रेरी मार्केट में शाम को अनोखी चहल-पहल रहती है जहाँ नेपानन्द ही सर्वोपरि है।

शुक्रवार को वहाँ से रवाना होकर दूसरे दिन वापस दिल्ली आ पहुँचे। स्टेशन पर श्री बृजलाल, रोवर लीडर हमें लिवाने आये। हुमायू के मकबरे के पास दिल्ली राज्य भारत स्काउट व गाइड के स्थायी शिविर केन्द्र पर हमारे ठहरने की व्यवस्था थी। वहाँ इतने अधिक पानी की उत्तम व्यवस्था थी कि हम खूब नहा-धो सके। दिन को नेशनल हैडक्वार्टर्स भवन देखने गये। वहाँ श्री सुशील के० दास, नेशनल सेक्रेटरी व श्रीमती स्नेह पटवर्धन, सयुक्त नेशनल सेक्रेटरी ने हमारा स्वागत किया। श्री दास ने हम सबों को विदेशी बैज व बोगल देकर हमारा सम्मान किया। दूसरे दिन हम अपने नगर शाहपुरा आ पहुँचे।

हमारी यात्रा तूफानी थी। इन थोड़े से क्षणों में प्रकृति का जो आनन्द मिला, उसकी अमिट छाप रहेगी। जो कुछ देखा, उससे आँखों को तृप्ति और मन को शान्ति मिली। उन पूर्वजों की याद रह-रहकर आ जाती थी, जिन्होंने अतीतकाल में बिना किसी यातायात के साधनों के केवल लाठी के सहारे खतरे की पगडंडियों से होकर इस दुर्गम पथ की यात्रा की है। उनके मन कितने पवित्र और भाव विशाल रहे होंगे। सचमुच उन्होंने सोचा होगा कि इसी जीवन में वे महाराजा युधिष्ठिर की तरह सशरीर स्वर्गारोहण कर रहे हैं। कहा करते थे कि इस पर्वतीय अंचल का एक विशेष पक्षी होता है, जिसकी 'टुलक'-'टुलक' शब्द से मिलती-जुलती आवाज है, मानो वह पक्षी लक्ष्य की ओर बढ़नेवाले थके-हारे पथिकों को निरन्तर अग्रसरित होते रहने की प्रेरणा देता आ रहा है।

भारत के कोने-कोने से एक ही भावना से अनुप्रेरित होकर हजारों नर-नारी पर्वत प्रदेश के इस अंचल में एकत्रित होते हैं, उनकी वेश-भूषा, भाषा, रहन-सहन आदि भिन्न-भिन्न होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक ही सूत्र में बंधे हुए हैं—ऐसा बन्धन जो हमें सदियों से बाँधे हुए है, जो आधुनिक सभ्यता के आक्रमण के बावजूद भी अपरिवर्तनशील है। देश में 'अनेकता में एकता' का चित्र यहीं देखने को मिलता है।

अंतः में भारतीय संस्कृति और एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए जिन महापुरुषों ने तीर्थयात्रा की परम्परा को चलाया, अपेक्षित साधनों के अभाव में इन दुर्गम स्थलों में मन्दिर-मठों का निर्माण कराया, जो अनादिकाल से जन-जीवन के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं, उनके अदम्य साहस, कर्मठ व्यक्तित्व और दूरदर्शित विवेक पर अनायास ही चकित, मुग्ध और स्तब्ध रह जाना पड़ता है। श्रद्धा से हमारा मस्तक उनके चरणों में अवनत हो जाता है।

राजस्थान स्टेट भारत स्काउट्स व गाइड्स, स्थानीय एसोसिएशन, शाहपुरा द्वारा आयोजित यह बद्रीनाथ-मसूरी यात्रा शाहपुरा से ६ जून को शुरू

हुई। यात्रा मे २२ स्काउटर, गाइडर थे। दल का नेतृत्व चेयरमैन श्री भंवरल
अग्रवाल ने श्री राजेन्द्र प्रसादसिंह डांगी व श्रीमती शान्ता वैष्णव की मदद
किया। इस यात्रा मे स्काउटरों, गाइडरों का वर्षभर के कार्य पर चयन कि
गया था। स्थानीय एसोसिएशन द्वारा समस्त रेल-किराये की आर्थिक मदद
दी गई थी। यह इस एसोसिएशन की तीसरी सफल यात्रा है।

जीवन-यात्रा का कोलाज

□

रमेश गर्ग

मातृभूमि की यात्रा मेरे जीवन की कठोरतम घड़ियो मे से कही जा सकती है। यह वही जगह है जहाँ मैं बचपन के अबोध क्षणो मे और उज्ज्वल भविष्य की आशा मे अपने दिन बिता चुका हूँ। बहुत कुछ प्रगति दुनिया ने की होगी, जमीन का आदमी अब चन्द्रमा पर पहुँच गया होगा, पर मेरी मातृभूमि पर लोगों की स्थिति ठीक इससे विपरीत है, वहाँ जाकर सगे-सम्बन्धियों, अड़ोस-पड़ोस मित्र-रिश्तेदारो के मुरझाये चेहरे, आर्थिक कठिनाइयाँ, अन्धविश्वास मे उलझी साँसें, निम्न स्तर का जीवन, लूट-खसोट और बचपन मे मेरे हृदय पर अंकित चित्र का विपरीत रूप ऐसे उपस्थित होता है कि मुझे असह्य वेदना होती है। वे लोग वहाँ बीमारियों मे पल रहे हैं। उन्हें आदर्श जीवन की या यूँ कहिए जीवन मे सफलता की, चैन से रहने की या सुख से जीवन बिताने की कोई जानकारी नहीं है। वे मुझे भी वहाँ एक-दो दिन मे ही इतना अधिक व्यथित कर देते हैं कि वहाँ से लौटने के बाद कितने ही दिन तो स्वस्थ होने मे लग जाते हैं।

दिल्ली देखकर लगता है कि यहाँ की प्रगतिशील मानव की दौड़ और गतिविधियों ने मुझे झकझोर दिया है, मन ममोसकर रह गया हूँ। दुनिया बहुत तीव्र गति से उन्नति पर है और मैं बहुत तीव्र गति से अवनति की तरफ। यहाँ गाड़ी, घोड़े, मोटर, रेल, पैदल दौड़नेवालो की ऐसी तीव्र गति है कि जीवन दुविधा में लगता है। पैसे की प्राप्ति ही आज के इस युग मे यहाँ काफी जोरों पर है। इसके पीछे कुछ लूट-खसोट भी मैं करते हैं। एशिया-७२ देखने गया। अभी-अभी जो सान्त्वना हुई थी वह यहाँ की मानवीय प्रगति को देखकर फिर उद्विग्न हो गई है। मुझमें यही शब्दों में मानव की इस प्रगति ने हीन भावनाओ को पैदा कर दिया है। दुनिया बहुत बढ़ गई है, बढ़ रही है, कुछ तुमने किया नहीं, करोगे या नहीं ? जयपुर हाउस में नई पेंटिंग्स का कलेक्शन, रवीन्द्र भवन में साहित्य के बढ़ते चरण, त्रिवेणी कला संगम का रंगमंचीय उत्थान, टाइम्स ऑफ

[illegible] ढंग में बिल का श्रीगणेश हुआ घटनाचक्र, [illegible] मामला [illegible] [illegible] से वर्तमान को उद्घाटनात्मक दृष्टि से देखकर, [illegible] में आने-जाने [illegible] भोगता रहा—कुछ नहीं किया जिन्दगी यूं ही गुजर गई। जिन्दगी में कुछ नया [illegible] या [illegible] व्यापार, दुनिया देखने को किया, आती-जाती पीढ़ियों को छूने की मनोवृत्ति, मारने-कूटने की प्रवृत्ति कुछ अच्छी नहीं लगी, सारी दुनिया जा रही है, पर गलत दिशा में।

विधान सभा के चुनाव कराने मीणों की बस्ती [illegible] में आकर हमें जगह-जगह डेरे डालने पड़े। किसी भी प्रकार की खरीद-बिक्री की वस्तु यहाँ उपलब्ध नहीं हो सकती। चुनाव के लिए अस्थायी ढांचा बनाना पड़ा। हर मीणे के पास लटकती कटार है। निरक्षर व्यक्तियों से बातचीत करने समय केवल 'हाँ' का उत्तर मिलता है। न पीने को चाय, न दूध। न खाने को चने, न पीने को पानी। मकानों की बनावट बाग की खाइयों में कोई मुश्किल से तीन-चार फुट की ऊँचाई लिए हुए जिनमें झुककर घुसना और झुककर निकलना आदिमयुग की तसवीर आज भी बीसवीं सदी में साक्षात् उपस्थित है। सुना था एक बीड़ी पर चाहो जो समर्पण करने को तैयार है और अड़ जाय तो एक मिनट में गरदन साफ। रात को सोते समय हमारे साथ मीणा परिवार के अन्य सदस्य सोने हुए थे। रात देर तक कुछ औरतें हँसी-ठट्ठा करती रहीं, हमारे सोने का समय आया तो वे चक्की पीसने बैठ गईं। दूसरे दिन कुण्ड पर नहाने गए तो एक मीणा नवयुवती निर्वसन स्नान कर रही थी। मुझे आदिमयुग की सत्यता पर फिर से विचार करना पड़ा।

आदिमयुग की यह तसवीर एशिया-७२ की वह तसवीर, मातृभूमि की कुछ स्मृतियाँ मेरे मानस-पटल पर फिल्म की तरह बनती-मिटती हैं। स्वतन्त्रता के पच्चीस वर्ष मेरे जीवन की झाँकी में प्रकट होते हैं, सिमटते हैं। संसार की यात्रा मेरे लिए अनबूझ पहेली है।

यह मेरी मातृभूमि है। घर के आँगन में पाँव रखा, बड़े भाई का ढोंग देखकर इतना दुःख हुआ कि केवल साँस नहीं निकली, बाकी कुछ नहीं बचा। वे अर्धनग्न शरीर जर्जर पिंजर में पितात्मा को बुलाने का ढोंग करके अपनी पत्नी तथा छोटे-छोटे बच्चों को भ्रम में डाले हुए हैं। स्वयं की जिन्दगी को तो अज्ञानतावश पतित कर ही चुके हैं, आनेवाली पीढ़ी के साथ भी अत्याचार कर रहे हैं। उनके सात-आठ बच्चे होंगे। पहली लड़की की शादी के लिए एक पैसा पास नहीं है। बीड़ियाँ पी-पीकर और रात-भर जग-जगकर निकम्मे बैठने के व्यसन से मजबूर वे एक पैसा कमाते नहीं हैं। दिन में उनके पाँच-सात बार घुटन और बेहोशी की शिकायत होती है। बीस दिन बाद लड़की की शादी है, तब तक एक सौ पचास बार बेहोशी का झटका उनको लगेगा। मेरे जाकर

ठने के बाद मामी मुझसे पूछती हैं, "उदास कैसे हो ? तबीयत तो ठीक है ?" निरुत्तर रहता हूँ।

मि० स० को रुचि पैसा जोड़ने में, लोगों के घर में ब्याह-शादी कराने , स्वयं को सेठ और सारी दुनिया को भिखमंगे कहने में आप आदत से मजबूर । होने को मामूली क्लर्क हैं पर अपने-आपको पृथ्वी पर विशिष्टतम व्यक्तियों में से एक समझते हैं क्योंकि चार-पाँच हजार रुपये आधी रोटी खाकर ब्याज आदि से दूसरों की आधी रोटी छीनकर इकट्ठे कर लिए हैं। हमारे घर का चक्कर सलिए लगाते हैं कि भाई इनको यह कहे कि कुछ सहायता करो और फिर म० स० उन्हें जलील करें। एक पैसे की सहायता तो करने का प्रश्न उठता ही हीं। वे तो अपने पैसे के बल पर अपनी सर्वोच्चता सिद्ध करने का मौका ढ़ते हैं।

मि० क० अपने जीवन का तो सभी अस्तित्व भुला चुके, अब अपने बच्चे के योग्य होने की इन्तजार में हैं। बच्चियाँ पागल-सी पैदा हुई हैं। पत्नी को असाध्य रोग है। बच्चे के योग्य होने में अभी दो-तीन वर्ष लगेंगे, तब तक पत्नी की बीमारी पर रोक लगाने की सलाह दिये हुए हैं।

यहाँ मातृभूमि की यात्रा में इसके बाद मिलनेवाले मि० म० हैं। विगत जीवन में पहलवानी करते थे। इनका रोब-दाब देखकर राह चलता आदमी भय खाता था। अकेले लकड़ी चलाकर सैकड़ों आदमियों को धराशायी कर देते। इन्हें मैं अपनी आँखों से देख चुका था। शादी के बाद आठ बच्चों के जन्म ने एक तो उन्हें हाथ-ठेला पकड़ा दिया। शरीर सूखकर ठूँठ हो चुका है। मुझे मिलते ही शुभ समाचार सुना रहे हैं—पिछले बुधवार को लड़की हुई है। मैं फिर अपनी बुद्धि में उलझकर गुम हो जाता हूँ और उनके द्वारा अपनी पूछी गई कुशलक्षेम का उत्तर नहीं दे पाता।

एशिया-७२ देखकर आगरा जाते समय दिल्ली में रिक्शावाले की दुष्प्रवृत्ति कुछ अच्छी नहीं लगी कि फतेहपुरी से पुरानी दिल्ली स्टेशन छोड़कर पाँच रुपये माँग लिये। हमारी जानकारी में दिल्ली से आगरा का ३-४ घंटे का मार्ग जो था वह दस घण्टे बाद पूरा हुआ। दोपहर दिल्ली से डेढ़ बजे रवाना होनेवाले हम रात ग्यारह बजे तक पत्नी और बच्चे एक ऐसी रेलगाड़ी में सफर करते रहे थे जिसके डिब्बे की एक भी खिड़की साबुत नहीं थी। मार्ग में पड़नेवाले किसी रेलवे स्टेशन पर किसी भी प्रकार की खाने-पीने की सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकती थी। रोशनी का बल्ब फ्यूज था। यात्रियों में इने-गिने आदमी—कुछ हिप्पी, कुछ फौजी, दो-एक भिखमंगे हमारे सहयात्री थे। हमारी ट्रेन आगरा कैंट पर ही समाप्त हो गई। हम यहाँ 'ताज' को गुलाब के पुष्पों से दो प्रेमियों की सजी हुई सेज में शयनावस्था में देखने आये थे पर सर्दी की रात स्टेशन

के बाहर, किसी भी सुव्यवस्थित होटल का अभाव, शीत हवा के फफकारे में पत्नी व बच्चे के साथ हमारी यात्रा—फिर एक होटल का दरवाजा बड़ी मुश्किल से खुलवाकर अपरिचित जगह का भय—हमें ऐसे समय से गुजार रहा था कि ताज देखने से पहले ही हमारे पति-पत्नी के मक़बरे खुदवाये जा रहे हैं जो यहाँ आशय पूरा होने से पहले ही दफना दिये जायेंगे। मौत की इस सुमधुर सेज के लिए तीन-चार घंटे का विश्राम लेने में हमें होटल के चौदह रुपये अपनी अल्प-अवशेष राशि के चुकाने पड़े। फिर जाकर आगरे का किला व ताजमहल देखा। किले की भव्यता और 'ताज' की अनुपमता ने मोहित कर दिया, पर आगरे की गन्दगी, वर्षों से साफ़ नहीं किया गया। कूड़ा-कचरा, तंग रास्ते पर बहती अपार जनसंख्या और ताजमहल से जुड़ी हुई मक्खियों से भिनभिनाती आटे की बोथ पर पड़ती हुई हमारी निगाहें शाहजहाँ और मुमताज के प्रेम-प्रतीक 'ताज' के निर्माण तथा झूठी विकृत भौंडी तस्वीर जुटाती रही।

चुनाव कराने से लिए तीसरे स्टेशन 'पहूनी' पर पहुँचना था कि लगा फिर एक बार राम के युग में आ गया हूँ। रात को खाना खाने के बाद सोना चाहता था कि 'माधव'—सोलह साल का एक लड़का हमारे बीच आ गया मालूम हुआ। दस वर्ष हुए उसका विवाह हो गया था। उसे एक शब्द भी लिखना-पढ़ना नहीं आता। उसने 'पहूनी' के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा। कभी रेल नहीं देखी। उससे पूछा—कभी ससुराल गया होगा, तो उत्तर था देखो बाबूजी! जब तक मेरे माता-पिता जिन्दा हैं मुझे ससुराल जाने की क्या आवश्यकता? मनुष्य का कर्तव्य है जब तक उसके माता-पिता जिन्दा रहें केवल उनकी आज्ञा का पालन करे, अपनी मनमानी करने को बहुत जिन्दगी पड़ी है। हमने कुछ मजाक करनी चाही पर उसने यह कहकर 'कि यह सभ्य मनुष्य का काम नहीं है, बुद्धिमानी यही है कि कोई अपने माता-पिता की सेवा कैसे करता है, बाकी पढ़ाई-लिखाई सब व्यर्थ है। हमने पूछा, तू 'पढ़ा-लिखा क्यों नहीं?' उसका उत्तर था 'दसवीं कक्षा के पढ़े-लिखे लड़कों से मैं ज्यादा बुद्धि रखता हूँ और आपसे भी ज्यादा अपने माता-पिता की आज्ञाओं का पालन करता हूँ, उनकी सेवा करता हूँ और अपने जीवन को सफल समझता हूँ।'

मैं दिल्ली की गगनचुम्बी इमारत पर से गिरा हुआ एशिया-७२ के रूसी पवेलियन के बाहर स्थित खड़े हुए विशाल राकेट से टकराया और उसे चूर-चूर होते देखता रहा।

आज से दस-बीस दिन पहले मातृभूमि गया था तो बड़े भाई की दयनीय दशा देखकर दुखित हुआ था। उसकी ऐसी स्थिति थी कि बीस दिन बाद लड़की की शादी है, जेब में एक पैसा नहीं है। क्या किया जाय? रहने का मकान बेचकर पैसा जुटाने की वह बात कर रहा था, मुझे बड़ी झुँझलाहट

ई थी कि जब सुबह-शाम के खाने का आटा नहीं है तो अभी विवाह करने की
ना आवश्यकता समझी जा रही है। जब कोई साधन पैसा जुटाने का नहीं है
आखिर होगा क्या ? मैंने जैसे-तैसे सौ रुपये अपने पास से यह कहकर
जवा दिये थे कि इसका अनाज खरीद लेना। अब मैं शादी मे पहुँच गया हूँ।
से मेरे पास नहीं हैं पर इतना जरूर है कि कोई अड़चन आयी तो कहूँगा अभी
उधार लेकर काम चलाओ, मैं फिर दे दूंगा। पर यहाँ देखता हूँ घर भर के
ोग इकट्ठे हैं, दुनिया भर का सामान इकट्ठा किया गया है। मनों दही-दूध
ा रहा है, ५०-१०० आदमी हर समय भोजन कर रहे हैं। इतने सारे रिश्ते-
ार इकट्ठे हो गये हैं जबकि खिलाने का कोई साधन नहीं है। चार-पाँच मिठाइयाँ
न रही हैं। इस सबमे हजारों रुपये के खर्चे के बावजूद आवश्यक सामग्री का
ठकाना नहीं है। मनों दूध-दही न जाने किसके लिए एकत्रित हुआ है ? बच्चे
ोलाहलकर रहे हैं, दोपहर के दो बज गये हैं। बच्चे खाने के लिए चिल्ला रहे
। मेरे लिए चाय की कोई व्यवस्था नहीं है मिठाइयाँ बन रही हैं। बड़े-बड़े कामों
र ध्यान है, आवश्यकता पर कोई गौर नहीं—पाँच-सात हजार का खर्चा हो
ायगा। अधिकांश खर्चा खाने-पीने का है। मेरी समझ मे नहीं आता दूसरो से
ागकर खाना और मकान बेचकर सम्बन्धियों का मनोरंजन करना क्यों आवश्यक
! यहाँ खानेवाला क्या एक भी यह अनुभव नहीं करता कि खिलानेवाले के
ास कुछ नहीं है और खिलानेवाला यह क्यो नहीं बता देता कि मैं खिलाने में
असमर्थ हूँ।

अब एक यात्रा नरकीवाड़े की भी कर लूं। नरक की संज्ञा जिसको मैं दे
रहा हूँ यह एक बड़ा शहर है। इससे पहले मैं बम्बई जैसे बड़े शहर मे लम्बे
अर्से तक रह चुका हूँ पर बड़े शहर की आज जो मुझे बात अखरी है वह यहाँ
फैली व्यक्तिवादी स्वार्थपरता और कुंठित मनोवृत्ति को लेकर उठी है। मैं
जानता हूँ कि विश्व के सभी कोने मे सभ्य कहलाने वाले व्यक्ति इन बड़े-बड़े
शहरों मे रहते हैं। ऐसी स्थिति मे इनसे मेल न खाकर यदि विरोध प्रकट कर
रहा हूँ तो अवश्य ही मूर्ख कहा जा सकता हूँ। दो दिन से इस बड़े शहर में
आकर मुझे जो कुछ अनुभव हुआ है वह मुझसे बिलकुल मेल नहीं खा रहा है।
यहाँ के वातावरण ने मुझमें हीन-भावनायें पैदा कर रखी हैं, मेरा अस्तित्व इसने
लूट लिया है और मैं अभी निश्चित भी नहीं कर पा रहा हूँ कि इन कागजों को
रंगने से और भावुकता अपनाकर मूर्खता दर्शाने से क्या लाभ है। दुनिया का
सभ्य समाज यही शहरों में प्रगतिपथ पर अग्रसर है और यदि मुझसे मेल नहीं
खाता तो अपने विचार-बोध पर फिर से मनन करने की आवश्यकता है।

यहाँ मुझे मार्ग के राहगीरों से लेकर घर मे बसे सभी लोगों का जीवन
भूखा हुआ, व्यक्तिवादी, स्वार्थी, कुंठित लगा। यहाँ लोगो ने जो पहले किसी

जमाने में चाहे पूँजीवादियों को गालियाँ देते रहे होंगे, पर अब उन्होंने स्वयं भी बड़े-बड़े महल बनाकर, बड़े-बड़े पद लेकर, कारों की सुख-सुविधाओं को अपनाकर सड़क पर चलनेवालों के प्रति बिलकुल निर्मोही, कठोर, अमानवीय रुख अपना लिया है। अब सड़क पर चलनेवाले उन्हें उसी प्रकार कोस रहे हैं जैसे पहले वे कभी किसी और को कोसते रहे होंगे। शहरी सभ्यता की यह अजीब बात है कि हम आगे चलकर वही मार्ग अपना लेते हैं जिसे कुछ समय पूर्व अनुचित कहते रहे हैं।

अब मैं अपने कार्यक्षेत्र की परिधि में वापस लौट चुका हूँ। अँधेरे में ८ बजे मेरी यात्रा की समाप्ति होना चाहती है। यहाँ न कोई सवारी का साधन है, न मजदूर को मिलने की आस! मार्ग में पग घसीटते-घसीटते एशिया-७२, पहूनी का माधव, तालकटोरा की युवती, मातृभूमि के सम्बन्धी, शहरों की तेज रफ्तार से दौड़नेवाली कारें, मेरे इर्द-गिर्द चक्कर काट रही हैं। घर पर बच्चे मेरा थैला सँभाल रहे हैं। मैं उनके लिए क्या लाया हूँ, पूछ रहे हैं। मैं इन्हें मूक शब्दों में कहता हूँ—थैला क्या देखते हो, मेरे अन्दर झाँककर देखो, क्या-क्या लाया हूँ……

रेडियो पर गाना सुनाई पड़ रहा है—

जिन्दगी कैसी है ? पहेली हाय—
कभी ये हँसाये, कभी ये रुलाये।

संस्मरण तथा
रेखाचित्र

सभ्यता के ठेकेदार

□

वीणा गुप्ता

ज के समाज मे ऐसे कितने ही इंसान हैं जो अपने को बड़ा सभ्य, पढ़ा-लिखा
र सलीकेवाला कहते हैं। परन्तु जब कभी ऐसे कुछ लोगों से वास्ता पड़ता है
दंग रह जाती हूँ। बहुत-से ऐसे लोग हैं जो देखने मे तो शुद्ध देसी घी ही
गते हैं। परन्तु उन्हें जब पास से देखो तो पता चलता है खाली सुगन्ध ही
ही घी की थी, वास्तविकता मे तो केवल वनस्पति ही था।

बात केवल इतनी-सी है कि लोग जब अपने को बहुत सभ्य बताते हैं तो
यह समझते हैं कि सफेद और प्रेस किये कपड़े पहनकर या टाई गले मे लटका-
र ही सभ्यता का सारा कोष उनके ही अधिकार में आ गया है। हालत यह
होती है उनको अच्छी तरह बैठना, बात करना या खाना भी नहीं आता।

ानी की रट

कुछ ही दिनो की बात है कि एक महाशय हमारे यहाँ खाने पर
आये थे। मेरे पति के अच्छे मित्र हैं। उनकी नई-नई शादी हुई थी। सो
बड़े चाव से सज-धजकर अपनी पत्नी के साथ आये और ड्राइंगरूम मे ऐसे
सजे कि बस कुछ मत पूछो। उन्हे अच्छी तरह मालूम था कि घर मे काम करने
के लिए मैं अकेली थी। फिर भी हर पाँच-दस मिनट बाद 'पानी चाहिए, पानी
चाहिए' की रट लगाते रहे। मेहमान आखिर मेहमान होता है। बीच-बीच मे
काम छोड़कर उन्हें पानी पिलाना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि खाना
बनने मे देरी हो गई। खैर, खाना तो खाया ही गया और वे सज्जन चले गये।
अगले दिन उन्होंने अपने एक मित्र को बताया कि हमारे यहाँ खाने मे काफी देर
होने के कारण उनका फिल्म का समय निकल गया और मूड ऑफ हो गया।
जब मुझे इसका पता चला तो बहुत क्रोध आया। सोचा, यदि उन्हें फिल्म देखनी
थी तो पहले कहते या फिर उनकी श्रीमती जी काम मे मेरा हाथ बँटा देतीं।

पर वे यह सब कैसे करतीं ? उनकी लिखाई-पढ़ाई में की गई मेहनत बेकार जो हो जाती !

अँगुलियाँ चाटते रहे

एक और सज्जन थे। भाग्य से कहें अथवा दुर्भाग्य से कि उनके साथ पिकनिक का प्रोग्राम बन गया। इन सज्जन की अभी शादी नहीं हुई है। पर करने की इच्छा रखते हुए कोई लड़की ही पसन्द नहीं आती। प्रत्येक को यह कहकर रिजेक्ट कर देते हैं कि इसे खाने-पीने का तरीका नहीं आता, उसे साड़ी बाँधनी नहीं आती, उसे बात करनी नहीं आती···

हाँ, तो बात पिकनिक की थी। बर्तनों की कमी के कारण मैंने अपने पति और उनके मित्र का खाना एक ही थाली में परोस दिया और स्वयं पास में बैठ गई। बैठ तो गई पर बड़ी ग्लानि आती रही। वे महाशय रोटी के कौर में सब्जी लेकर मुँह में रखते और अँगुलियाँ फिर से कटोरी में भटका देते। फिर उन्हीं अँगुलियों को चप-चप करके चाट लेते। उस समय क्रोध तो मुझे बहुत आया पर कुछ कर नहीं सकती थी। मेरे पति भी उनकी इस हरकत से परेशान थे। पर वे भी क्या करते ? किसी तरह खाना पूरा किया। उस दिन के बाद से तो मैंने कसम ही उठा ली कि खाना भले ही साथ परोस दूँ, पर सब्जी तो कम से कम अलग-अलग कटोरियों में ही दूँगी।

पूरा चम्मच मुँह में

एक बार हमें एक डॉक्टर के यहाँ चाय पर निमंत्रित किया गया। वैसे मुझे चाय पीना अच्छा तो नहीं लगता परन्तु डॉक्टर साहब हमारे दूर के सम्बन्धी थे इसलिए जाना भी पड़ा। वहाँ भी कुछ नया ही ढंग देखा। चाय के साथ दाल मोठ खाने के लिए रखे हुए थे। प्लेट एक ही थी और चम्मच चार। डॉक्टर साहब पूरा चम्मच दाल से भरते और सीधे मुँह के अन्दर ले जाते। चम्मच जब बाहर आता तो मुँह की चारदीवारी से पूरा घिसटता हुआ आता। उसी से फिर वे दाल भरते और फिर वही क्रम। मुझे यह देखकर बड़ी घृणा हुई। डॉक्टर साहब को तो स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह नहीं करना चाहिए था। ऐसा करते से उनका थूक चम्मच के द्वारा सारी दाल को लगता था जो किसी दूसरे के मुँह में भी गया। चाहिए तो यह था कि वे चम्मच से दाल उठाकर दूसरे हाथ की हथेली पर रखते और मुँह में डालते। या फिर चम्मच को मुँह से कुछ दूरी पर रखकर ही दाल मुँह में डालते।

नाक साफ करती

परसों की ही तो बात है, मैं अपनी एक सहेली के घर गई थी। शिष्टता से उसने चाय को पूछ लिया। फिर वही परेशानी। मुझे चाय की इच्छा कभी होती नहीं और आजकल जहाँ जाओ चाय के अतिरिक्त कुछ मिलता नहीं। खैर, उसके काफी जोर देने पर मैंने मान लिया। कुछ देर में वह पकौड़े भी तलकर ले आयी। प्लेट मेज पर रखकर वह सामने बैठ गई। बैठना था कि उन्हें एक छींक आयी। छींक आते ही उन देवी जी ने सीधे हाथ की अँगुली और अँगूठे के बीच अपना नाक दबाया और ढेर-सा गन्द निकाल बाहर किया। हाथ को न पोंछा, न साफ किया, उठाया पकौड़ा और गप से मुँह में। इतना सब देखने के बाद किसकी इच्छा खाने को करेगी! किसी तरह खाली चाय पीकर वहाँ से आ पायी।

इन्हें कौन सिखाए !

अब एक दृष्टि यदि आज के इन सलीके और सभ्यता के ठेकेदारों पर डालें तो पता चले कि वास्तव में ये कितना कुछ जानते हैं। इतनी शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी यदि मनुष्य को ये छोटी-छोटी बातें सिखानी पड़ें तो कौन सिखाए ! ये बातें ऐसी हैं कि न तो कोई कह सकता है और न ही कोई टोक सकता है। हाँ, अच्छी घरेलू परम्परा से यदि माता-पिता बच्चों को शुरू में ही ये बातें समझाते रहें तो कुछ बात बन सकती है और लोग इस तरह से दूसरों की पैनी निगाह से बच सकते हैं।

काश, फिर मिल जाये, शरारत का वह अधिकार

कुन्दनसिंह सजल

विद्यार्थी-जीवन शरारतों का मेला होता है। विद्यार्थीगण शरारतों को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। संभवत: आश्रम-व्यवस्था में विद्यार्थियों के लिए शरारतें अभिशाप समझी जाती थीं किन्तु जैसे-जैसे युग बदले हैं और यह सदी प्रारम्भ हुई है, अधुनातन विद्यार्थियों के लिए शरारतें तो आभूषण बन गई हैं, विशेषता बन गई हैं। हम जब विद्यार्थी थे, रेलगाड़ी, बसों और सिनेमाघरों को अपने ससुरालवालों की सम्पत्ति समझते थे और बिना टिकिट, बेहिचक इनके उपयोग को अपना अधिकार समझते थे। हमें याद नहीं आता कि हमने विद्यार्थी-जीवन में कभी रेलगाड़ी, बस या सिनेमा का टिकट खरीदा हो किन्तु एक बात अवश्य थी, सफर को या चित्र-दर्शन को हम अपने गिरोह के साथ निकलते थे, एकाकी नहीं। एक बार एक सज्जन से हमारा साक्षात्कार हुआ। वे हमें देखते ही भांप गये और बोले, "पढ़ते हो ?" हमने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "जी हां।" "हड़ताल कितनी बार की ?" उनका दूसरा प्रश्न था। "जी, अभी तक तो ऐसा अवसर आया नहीं।" हमने सहज-भाव से उत्तर दिया। 'कितनी बार बसें जलाईं', 'कितनी सरकारी सम्पत्ति नष्ट की', 'कितने अध्यापकों को पीटा', 'कितनी बार फेल हुए', 'कितनी बार रेस्टीकेशन हुआ' आदि प्रश्नों का जब हमने नकारात्मक उत्तर दिया तो आप फर्माने लगे, "यार, क्यों विद्यार्थी के नाम को कलंकित करते हो। पढ़ने का चक्कर छोड़ो और घर बसाने की चिन्ता करो।"

हम अपने विद्यार्थी-जीवन में हमेशा छात्र-नेता रहे थे और ऐसी बात नहीं थी कि हड़ताल, तोड़-फोड़ तथा अध्यापकों से उलझने के अवसर हमारे सामने न आए हों किन्तु अपने वंश के संस्कार हम पर इस कदर हावी थे कि हम बचपन से ही अपने वंश की परम्पराओं के कायल हो गए थे और अनुशासन हमारे रोम-रोम में घर किये हुए था। शालीनता को हम आवश्यक वस्त्र की भांति ओढ़े हुए थे।

विद्यार्थी-जीवन में हमारी हमेशा यह कोशिश रही कि हम शरारतें भी करते रहें तथा हमारे बुजुर्ग एवं अध्यापक हमें शरीफों की पंक्ति से भी न निकालें। आप सच मानिए, हम अपनी कोशिश में सफल रहे। मुहल्ले के बुजुर्ग तथा हमारे अध्यापक हमें अपने मुहल्ले और विद्यालय का सबसे शरीफ विद्यार्थी समझते थे और उनकी दृष्टि से ओझल हम विद्यालय तथा मुहल्ले में विद्यार्थियों की शरारती गतिविधियों के संचालक थे।

हम अपने पिताजी की एकमात्र संतान हैं अतः कम उम्र में ही हमारे गले में विवाह की फाँसी लगना आवश्यक था। नतीजा यह हुआ कि हम विश्व-विद्यालय स्तर तक, इच्छा होते हुए भी, अपना अध्ययन अनवरत न रख सके और हमारे सब सपने, वर्षा आने पर कच्ची भीत की भाँति, श्रीमती जी के गृह-प्रवेश के साथ ही ढह गये। हम मजबूर होकर सबसे शीघ्र और आसानी से प्राप्त अध्यापक की नौकरी करने लगे।

निरन्तर आठ वर्ष तक चाक घिसने के पश्चात् हमारे धूमिल जीवन में विद्यार्थी-जीवन-रूपी प्रभात का आलोक पुनः प्रकट हुआ और हम एक कॉलेज में विद्यार्थी अध्यापक के रूप में बी. एड. की ट्रेनिंग के लिए प्रविष्ट हुए। हमारे मस्तिष्क में पुनः वे ही विद्यार्थी-जीवन की शरारतें कुलाँचें भरने लगीं और हम ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे कि कब शरारत करने का सुअवसर आये। वैसे कॉलेज में हम बी. एड. की ट्रेनिंग लेने भर्ती हुए थे, शरारतों की ट्रेनिंग लेने नहीं। आखिर हमारी मौन-साधना रंग लायी और एक दिन ऐसा आया कि हम एक के बाद एक तीन शरारतें कर बैठे उस दिन।

हुआ यों कि हमारे प्रिंसिपल साहब हमें मनोविज्ञान पढ़ाते थे। नाइत्तफ़ाक़ी यह थी कि उनका पीरियड मध्यान्तर से पूर्व आता था। आप पढ़ाते-पढ़ाते इतने खो जाते थे कि पूरा मध्यान्तर का समय भी अपने कालांश में ले लेते थे। सारी कक्षा मन मसोसकर रह जाती थी। न कोई पेशाब की हाजत मिटा सकता था और न कोई बीड़ी-सिगरेट, चाय-पान की इच्छा पूरी कर सकता था। एक दिन एक साथी ने मुझसे कहा, "यार सजल, इस खूसट प्रिंसिपल को कोई ऐसा सबक दो कि यह मध्यान्तर तो खराब न किया करे रोज। मैं तुम्हें चाय पिलाऊँगा।" उस रोज मैं जान-बूझकर अगली पंक्ति में जाकर बैठ गया। कालांश शुरू हुआ। प्रिंसिपल साहब कक्षा में तशरीफ लाये और शुरू हो गये। मध्यान्तर का पीरियड लगा। मैंने हल्के-से खाँसा, प्रिंसिपल साहब की निगाह मुझ पर पड़ी और मेरी निगाह अपनी कलाई पर बँधी घड़ी पर। उन्हें समझने में एक पल न लगा और बोले, "क्षमा करना, अभी एक मिनट में क्लास छोड़ता हूँ।" और वे सचमुच एक मिनट पूर्व ही कक्षा से कागज-पत्र समेटकर पीठ दिखाते नजर आये। वे हमारे मित्र तो हमारी हरकत समझ गये। यूनियन का

काश, फिर मिल जाये, शरारत का वह अधिकार

□

कुन्दनसिंह सजल

विद्यार्थी-जीवन शरारतों का मेला होता है। विद्यार्थीगण शरारतों को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। संभवतः आश्रम-व्यवस्था में विद्यार्थियों के लिए शरारतें अभिशाप समझी जाती थीं किन्तु जैसे-जैसे युग बदले हैं और यह सदी प्रारम्भ हुई है, अधुनातन विद्यार्थियों के लिए शरारतें तो आभूषण बन गई हैं, विशेषता बन गई हैं। हम जब विद्यार्थी थे, रेलगाड़ी, बसों और सिनेमाघरों को अपने ससुरालवालों की सम्पत्ति समझते थे और बिना टिकिट, बेहिचक इनके उपयोग को अपना अधिकार समझते थे। हमें याद नहीं आता कि हमने विद्यार्थी-जीवन में कभी रेलगाड़ी, बस या सिनेमा का टिकट खरीदा हो किन्तु एक बात अवश्य थी, सफर को या चित्र-दर्शन को हम अपने गिरोह के साथ निकलते थे, एकाकी नहीं। एक बार एक सज्जन से हमारा साक्षात्कार हुआ। वे हमें देखते ही भौंचक्के रह गए और बोले, "पढ़ते हो?" हमने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "जी हाँ।" "हड़ताल कितनी बार की?" उनका दूसरा प्रश्न था। "जी, अभी तक तो ऐसा अवसर आया नहीं।" हमने सहज-भाव से उत्तर दिया। 'कितनी बार बसें जलाईं', 'कितनी सरकारी सम्पत्ति नष्ट की', 'कितने अध्यापकों को पीटा', 'कितनी बार फेल हुए', 'कितनी बार रेस्टीकेशन हुआ' आदि प्रश्नों का जब हमने नकारात्मक उत्तर दिया तो आप फरमाने लगे, "यार, क्यों विद्यार्थी के नाम को कलंकित करते हो। पढ़ने का चक्कर छोड़ो और घर बसाने की चिन्ता करो।"

हम स्वयं विद्यार्थी-जीवन में हमेशा छात्र-नेता रहे थे और ऐसी बात नहीं थी कि हड़ताल, तोड़-फोड़ तथा अध्यापकों से उलझने के अवसर हमारे सामने न आए हों किन्तु [illegible] के संस्कार हम पर इस कदर हावी थे कि हम बचपन से ही [illegible] की परम्पराओं के कायल हो गए थे और अनुशासन हमारे रोम-रोम में भर दिया हुआ था। [illegible] हम आदर्श छात्र की भांति [illegible] हुए थे।

विद्यार्थी-जीवन में हमारी हमेशा यह कोशिश रही कि हम शरारतें भी करते रहें तथा हमारे बुजुर्ग एवं अध्यापक हमें शरीफों की पक्ति से भी न निकालें। आप सच मानिए, हम अपनी कोशिश में सफल रहे। मुहल्ले के बुजुर्ग तथा हमारे अध्यापक हमें अपने मुहल्ले और विद्यालय का सबसे शरीफ विद्यार्थी समझते थे और उनकी दृष्टि से ओझल हम विद्यालय तथा मुहल्ले में विद्यार्थियों की शरारती गतिविधियों के संचालक थे।

हम अपने पिताजी की एकमात्र संतान है अतः कम उम्र में ही हमारे गले में विवाह की फाँसी लगना आवश्यक था। नतीजा यह हुआ कि हम विश्व-विद्यालय स्तर तक, इच्छा होते हुए भी, अपना अध्ययन अनवरत न रख सके और हमारे सब सपने, वर्षा आने पर कच्ची भीत की भाँति, श्रीमती जी के गृह-प्रवेश के साथ ही ढह गये। हम मजबूर होकर सबसे शीघ्र और आसानी से प्राप्त अध्यापक की नौकरी करने लगे।

निरन्तर आठ वर्ष तक चाक घिसने के पश्चात् हमारे धूमिल जीवन में विद्यार्थी-जीवन-रूपी प्रभात का आलोक पुनः प्रकट हुआ और हम एक कॉलेज में विद्यार्थी अध्यापक के रूप में बी. एड. की ट्रेनिंग के लिए प्रविष्ट हुए। हमारे मस्तिष्क में पुनः वे ही विद्यार्थी-जीवन की शरारतें कुलाँचें भरने लगी और हम ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे कि कब शरारत करने का सुअवसर आये। वैसे कॉलेज में हम बी. एड. की ट्रेनिंग लेने भर्ती हुए थे, शरारतों की ट्रेनिंग लेने नहीं। आखिर हमारी मौन-साधना रग लायी और एक दिन ऐसा आया कि हम एक के बाद एक तीन शरारतें कर बैठे उस दिन।

हुआ यों कि हमारे प्रिंसिपल साहब हमें मनोविज्ञान पढ़ाते थे। नाइत्तफ़ाकी यह थी कि उनका पीरियड मध्यान्तर से पूर्व आता था। आप पढ़ाते-पढ़ाते इतने खो जाते थे कि पूरा मध्यान्तर का समय भी अपने कालांश में ले लेते थे। सारी कक्षा मन मसोसकर रह जाती थी। न कोई पेशाब की हाजत मिटा सकता था और न कोई बीड़ी-सिगरेट, चाय-पान की इच्छा पूरी कर सकता था। एक दिन एक साथी ने मुझसे कहा, "यार सजल, इस खूसट प्रिंसिपल को कोई ऐसा सबक दो कि यह मध्यान्तर तो खराब न किया करे रोज। मैं तुम्हें चाय पिलाऊँगा।" उस रोज मैं जान-बूझकर अगली पक्ति में जाकर बैठ गया। कालांश शुरू हुआ। प्रिंसिपल साहब कक्षा में तशरीफ लाये और शुरू हो गये। मध्यान्तर का पीरियड लगा। मैंने हल्के-से खाँसा, प्रिंसिपल साहब की निगाह मुझ पर पड़ी और मेरी निगाह अपनी कलाई पर बँधी घड़ी पर। उन्हें समझने में एक पल न लगा और बोले, "क्षमा करना, अभी एक मिनट में क्लास छोड़ता हूँ।" और वे सचमुच एक मिनट पूर्व ही कक्षा से कागज-पत्र समेटकर पीठ दिखाते नजर आये। वे हमारे मित्र तो हमारी हरकत समझ गये। यूनियन का

चुनाव जीतकर जब हम प्रिंसिपल साहब के सामने पहुंचे और हमारे परिचय की जब बारी आयी तो पहले ही बोल उठे, "रहने दीजिए, आपको तो मैं भली प्रकार जानता हूं। आपने मुझे अपनी कक्षा से भगा जो दिया था।" सुनकर सभी हंसने लगे।

कॉलेज में एक व्याख्याता थे मिस्टर शर्मा। आप हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों से एम. ए. थे। शर्मा जी की विशेषता यह थी कि वे इराकू-रिटर्न थे, इसलिए आपके पढ़ाने का माध्यम अंग्रेजी था। कक्षा के सभी विद्यार्थी (अध्यापक) उनकी इस आदत से परेशान थे क्योंकि सभी विद्यार्थी (अध्यापक) बहुत कम को छोड़कर रॉयल डिवीज़न (तृतीय श्रेणी) के डिग्रीधारी थे। शर्मा जी की एक और विशेषता थी कि आप आवश्यकता से बहुत अधिक लम्बे थे। पढ़ाने खड़े होते और यदि श्यामपट्ट के सामने आ जाते तो आपका सिर श्यामपट्ट के ऊपर की चौखट को छूता था। उस दिन जैसे ही शर्मा जी के विषय का कालांश प्रारम्भ हुआ और पहले कालांश के व्याख्याता कक्षा छोड़कर गये, हमने एक चाक लिया और श्यामपट्ट पर डिंगल का यह दोहा लिख दिया—

सखी, तिहारो कंतड़ो, लाम्बो घणूं लबाक।
चौमासा री भींत ज्यूं, पड़ं बचाक बचाक॥

शर्मा जी आये और श्यामपट्ट की ओर मुखातिब हुए। श्यामपट्ट पर उक्त दोहा लिखा देखकर आगबबूला हो गये और उपस्थिति लिये बिना ही कड़ककर बोले, "किसने यह शरारत की है?" कक्षा के सभी साथी शांत मन-ही-मन हंस रहे थे। हम पर जो बीत रही थी, हम जान रहे थे। एक मिनट मौन के पश्चात् शर्मा जी ने वही प्रश्न और भी तीव्र आवाज़ में दोहराया तो हम सिर झुकाए हुए अपने स्थान पर खड़े हो गए। हमारा खड़ा होना था कि कक्षा की हंसी एक साथ फूटी और नतीजा यह हुआ कि शर्मा जी दुम दबाकर कक्षा छोड़कर भाग गये और फिर कभी उन्होंने अंग्रेजी में नहीं पढ़ाया।

प्रथम घटना के सूत्रधार मित्र हमें अपने वादे के अनुसार सायंकाल एक रेस्त्रां में चाय-पान के लिए ले गये। हमारे साथ तीन-चार मित्र और भी थे। हम सभी बैठे चाय पिया कर रहे थे कि पास की मेज पर एक सज्जन अपने साथियों में शेखी बघार रहे थे, "मैंने आज मिस्टर नंदा और वर्मा को, जो अंग्रेजी और गणित के अध्यापक हैं, कक्षा के सामने ही डांटा और उन्हें बताया कि ये विषय कैसे पढ़ाए जाते हैं।" बातचीत से ज्ञात हुआ कि आप मिस्टर माथुर एक सेकण्डरी स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं तथा हिन्दी से एम. ए. हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि एक वर्ष पूर्व तक आप हिन्दी के वरिष्ठाध्यापक थे। हम उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रहे थे तथा हमें खामोश देखकर साथी सोच रहे थे कि हम ज़रूर कुछ शरारत की सोच रहे हैं। माथुर साहब की बात समाप्त होते ही

हमने उनसे अर्ज किया, "क्यों माथुर साहब ! आप बताइये कि जब कोई वरिष्ठ अध्यापक होता है तब तो उसमे एक ही विषय की योग्यता होती है किन्तु प्रधान-अध्यापक होते ही उसमें सभी विषयों का ज्ञान कैसे समाविष्ट हो जाता है !" इतना सुनना था कि हमारे साथी तथा उनके साथी इतनी जोर से हँसे कि रेस्तराँ के माहौल पर वह हँसी एक आकर्षण बनकर छा गई । नतीजा यह हुआ कि माथुर साहब अपने साथियों को वहीं छोड़कर खिसियाने-से भाग गये । ये घटनाएँ जब अकेले में भी स्मरण हो आती हैं या साथी लोग मिलने पर दुहरा देते हैं, तो बरबस हँसी फूट पड़ती है और हम मन-ही-मन सोचने लगते हैं कि काश, ऐसी शरारतों के लिए फिर मिल जाये—विद्यार्थी-जीवन ।

एक चित्र की कहानी हक़ीक़त की जुबानी

□

रमेश गर्ग

२० जुलाई, ७२

युनिसेफ द्वारा आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी जो कि फ्रांस में होगी, उसमें भाग लेने के लिए मैं एक चित्र 'वसन्तोल्लास' शीर्षक पर बना रहा हूँ। दो-चार दिन से रात को नींद नहीं आती। दिन मे दस-बारह घंटे एक लगन बैठकर इस चित्र को बनाता हूँ और रातभर उसे देखते रहने से जी नहीं भरता। प्रतियोगिता मे जीतने की महत्वाकांक्षा है सो अलग, इससे भी अधिक सुखानुभूति इस चित्र से मिलनेवाली कला-साधना से मिल रही है। मैं सोचता हूँ जिस परिश्रम से मैं यह चित्र बना रहा हूँ वह विश्व के कला-जगत मे एक उत्कृष्ट चित्र सिद्ध होगा।

२७ जुलाई, ७२

कला से सम्बन्ध तो वैसे पन्द्रह वर्षों से बना हुआ है, पर कला का साक्षात्कार आज ही हुआ। जो चित्र वसन्तोल्लास मैं बना रहा हूँ, यह एक विशाल चित्र है, ऊपर के अर्ध भाग मे हरे भरे कुंजों से और पुष्पों से लदे मकान हैं। आंगन में हाथ का सहारा लिये, शरीर का भार संभाले हुए एक स्त्री है। सम्पूर्ण चित्र 'राजपूत शैली' से प्रेरित कला की आधुनिकतम विधाओं से अभि-व्यक्त करने का मैं प्रयास कर रहा हूँ। घनवाद, अभिव्यंजनावाद, प्रभाववाद, यथार्थ-वाद, अतियथार्थवाद, कोलाज व अमूर्तवाद आदि मिश्रित शैलियों का उपयोग इसमें किया जा रहा है। इस नारी की सहज-सुलभ सरलता, कोमलता, स्वाभा-विकता के अतिरिक्त देहाग्नि और प्रतीक्षा में आतुर विकलता वसन्त राग से अंकित होकर समस्त वातावरण को चेतन करती हुई सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति में परिणत हो सके, ऐसा मेरा निरन्तर प्रयास है। कचनार, सेंहमल, टेसू, ढाक, सीताम

यथा पलास आदि पुष्प, मंजरी से लदे रसालवृक्ष के मध्य जीव-विहीन उपवन का दृश्य और वहां पर विश्राम लेती यह थकित नारी विरहिणी की अन्तर्व्यथा के साथ-साथ ऋतु-सम्राट की अठखेलियों से सम्मोहित हो ऐसा आभास दे कि कहा नहीं जा सके कि यह 'विप्रलब्धा' है या 'वासकसज्जा', 'रूपगर्विता' है या 'प्रोषितपतिका'।

मेरे इस प्रयास में एक सप्ताह से जो सफलता नहीं मिल रही थी उससे बड़ी बेचैनी थी। आज एकाएक इस आकृति की सफलता पर और स्त्री के सौन्दर्य पर मैं विचलित हो गया हूँ। मैं उसके सामने एक लम्बे समय तक बैठा हुआ अब यह भूल-सा गया हूँ कि वह एक चित्र है क्योंकि ऐसी अपूर्व सुन्दरता तो मैंने पहले कभी चर जगत में देखी नहीं, उस पर वसन्त से लबालब भरी हरियाली में किसी सुन्दर स्त्री का इस प्रकार स्थिर लेटे रहना और उसे घटों सामने बैठकर निहार पाना चल जगत में तो सम्भव नहीं और अचल सौन्दर्य मुझे इस प्रकार विचलित कर असहाय कर देगा, यह आज ही अनुभव हुआ।

२६ जुलाई, ७२

चित्र वसन्तोल्लास को देखने के लिए कुछ दर्शक एकत्रित हो गये हैं। वे स्त्री के अंग-सौष्ठव, रूप-माधुर्य और भावभगिमा की तो खुलकर प्रशंसा कर रहे हैं पर मैं देख रहा हूँ कि वसन्त के उल्लास की गहराई में तो एक-दो ही दर्शक पहुँच पा रहे हैं। 'स्त्री' के सौन्दर्य पर रीझकर मानव-मस्तिष्क अधिक कुठित हो गया है। एक महानुभाव पर कुछ नदी की-सी प्रतिक्रिया देखी गई। एक सज्जन स्त्री के मुख पर हँसी की झलक देने की जिद्द करते रहे। एक अन्य साथी आकृति की मांसल चिकनाई पर रीझते रहे और इस चित्र के आगे दस व्यक्तियों की दस प्रकार की प्रतिक्रिया सुनना रोचक लगा और उनसे प्राप्त अनुभव आवश्यक भी थे।

७ अगस्त, ७२

आज ज्यों ही 'वसन्तोल्लास' को घर से विदा करने को प्रस्तुत हुआ कि बीस दिन से ठहरी हुई वर्षा शुरु हो गई। चित्र की वह आकृति वर्षा में भिगोने के लिए घर से निर्वासित कर दी गई। इतने दिनों से जिसे दिल में लगा रखा था भीगने के लिए छोड़ दी गई। घर से बाहर उस प्रिय, कोमल, सुन्दर, मधुर, भावुक, आरामप्रिय, गृहवासिनी, सुहासिनी को क्या-क्या कष्ट सहन करने पड़ेंगे, कुछ भी विचार नहीं किया। इसीलिए तो मुझसे दूर करके कोई चित्र को मैं प्रसन्न नहीं होता। लोगों में तो इतना भी बोध नहीं। कोई कह रहा था, 'इस बक्से में क्या है? फिल्म के पोस्टर हैं क्या? दूकान के साइनबोर्ड होंगे,

एक चित्र की कहानी हक़ीक़त की ज़ुबानी

□

रमेश गर्ग

२० जुलाई, ७२

युनिसेफ द्वारा आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी जो कि फ्रांस में होगी, उसमे भाग लेने के लिए मैं एक चित्र 'वसन्तोल्लास' शीर्षक पर बना रहा हूं। दो-चार दिन से रात को नीद नही आती। दिन में दस-बारह घंटे एक लगन बैठकर इस चित्र को बनाता हूं और रातभर उसे देखते रहने से जी नहीं भरता। प्रतियोगिता में जीतने की महत्त्वाकांक्षा है सो अलग, इससे भी अधिक सुखानुभूति इस चित्र से मिलनेवाली कला-साधना से मिल रही है। मैं सोचता हूं जिस परिश्रम से मैं यह चित्र बना रहा हूं वह विश्व के कला-जगत मे एक उत्कृष्ट चित्र सिद्ध होगा।

२७ जुलाई, ७२

कला से सम्बन्ध तो वैसे पन्द्रह वर्षों से बना हुआ है, पर कला का साक्षात्कार आज ही हुआ। जो चित्र वसन्तोल्लास मैं बना रहा हूं, यह एक विशाल चित्र है, ऊपर के अर्ध भाग में हरे भरे कुंजों से और पुष्पों से लदे मकान हैं। आंगन मे हाथ का सहारा लिये, शरीर का भार संभाले हुए एक स्त्री' है। सम्पूर्ण चित्र 'राजपूत शैली' से प्रेरित कला की आधुनिकतम विधाओं से अभिव्यक्त करने का मैं प्रयास कर रहा हूं। घनवाद, अभिव्यंजनावाद, प्रभाववाद, यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, कोलाज व अमूर्तवाद आदि मिश्रित शैलियों का उपयोग इसमें किया जा रहा है। इस नारी की सहज-सुलभ सरलता, कोमलता, स्वाभाविकता के अतिरिक्त देहाग्नि और प्रतीक्षा में आतुर विकलता वसन्त राग से झंकरित होकर समस्त वातावरण को चेतन करती हुई सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति मे परिणत हो सके, ऐसा मेरा निरन्तर प्रयास है। कचनार, सेहमल, टेसू, ढाक, गोरख

तथा पलास आदि पुष्प, मंजरी से लदे रसालवृक्ष के मध्य जीव-विहीन उपवन का दृश्य और वहाँ पर विश्राम लेती यह थकित नारी विरहिणी की अन्तर्व्यथा के साथ-साथ ऋतु-सम्राट की अठखेलियों से सम्मोहित हो ऐसा आभास दे कि कहा नही जा सके कि यह 'विप्रलब्धा' है या 'वासकसज्जा', 'रूपगर्विता' है या 'पोषितपतिका'।

मेरे इस प्रयास मे एक सप्ताह से जो सफलता नही मिल रही थी उससे बड़ी बेचैनी थी। आज एकाएक इस आकृति की सफलता पर और स्त्री के सौन्दर्य पर मैं विचलित हो गया हूँ। मैं उसके सामने एक लम्बे समय तक बैठा हुआ अब यह भूल-सा गया हूँ कि वह एक चित्र है क्योकि ऐसी अपूर्व सुन्दरता तो मैंने पहले कभी चर जगत में देखी नही, उस पर बसन्त से लबालब भरी हरियाली मे किसी सुन्दर स्त्री का इस प्रकार स्थिर लेटे रहना और उसे घटो सामने बैठकर निहार पाना चल जगत मे तो सम्भव नहीं और अचल सौन्दर्य मुझे इस प्रकार विचलित कर असहाय कर देगा, यह आज ही अनुभव हुआ।

२६ जुलाई, ७२

चित्र वसन्तोल्लास को देखने के लिए कुछ दर्शक एकत्रित हो गये हैं। वे स्त्री के अंग-सौष्ठव, रूप-माधुर्य और भावभंगिमा की तो खुलकर प्रशंसा कर रहे हैं पर मैं देख रहा हूँ कि वसन्त के उल्लास की गहराई मे तो एक-दो ही दर्शक पहुँच पा रहे हैं। 'स्त्री' के सौन्दर्य पर रीझकर मानव-मस्तिष्क अधिक कुंठित हो गया है। एक महानुभाव पर कुछ नशे की-सी प्रतिक्रिया देखी गई। एक सज्जन स्त्री के मुख पर हँसी की झलक देने की जिद करते रहे। एक अन्य साथी आकृति की मांसल चिकनाई पर रीझते रहे और इस चित्र के आगे दस व्यक्तियों की दस प्रकार की प्रतिक्रिया सुनना रोचक लगा और उनसे प्राप्त अनुभव आवश्यक भी थे।

७ अगस्त, ७२

आज ज्यों ही 'वसन्तोल्लास' को घर से विदा करने को प्रस्तुत हुआ कि बीस दिन से ठहरी हुई वर्षा शुरु हो गई। चित्र की वह आकृति वर्षा मे भिगोने के लिए घर से निर्वासित कर दी गई। इतने दिनों से जिसे दिन में लगा रखा था भीगने के लिए छोड़ दी गई। घर से बाहर उस प्रिय, कोमल, सुन्दर, मधुर, भावुक, आरामप्रिय, गृहवासिनी, सुहागिनी को क्या-क्या कष्ट सहन करने पड़ेंगे, कुछ भी विचार नहीं किया। इसीलिए तो मुझसे दूर करके कोई चित्र को मैं प्रसन्न नहीं होता। लोगो मे तो इतना भी बोध नहीं। कोई कह रहा था, 'इस बक्से में क्या है? फिल्म के पोस्टर हैं क्या? दुकान के साइनबोर्ड होंगे,

४ जनवरी, १९७३

चित्र 'वसन्तोल्लास' के मिल जाने की सूचना से मेरा रोम-रोम हर्ष से खिल उठा है कि 'तुम' मिल गई हो। बिलकुल आज मैं ऐसे ही क्षणों का अनुभव कर रहा हूँ कि जीवन-साथिन एक बार खो जाय और फिर मिले तो क्या ही प्रसन्नता हो। सोचता हूँ एक बार वह आ जाये तो खूब जी भरकर बातें करूँगा। शिकायतें करूँगा कि तुम कहाँ चली गई थी। तुम्हारा लापता होना कोई अच्छी बात तो नहीं है और तुम्हें लापता करने में किसी और का हाथ था तो फिर तुम्हें घर से निकालना उचित बात नहीं।

१२ जनवरी, १९७३

चित्र वापस लौट आया। जब तक तुम्हें देख नहीं लिया यही शंका बनी रही कि तुम वापस लौट भी गई हो या नहीं, सुरक्षित भी हो या नहीं। कष्टों के थपेड़ों ने तुम्हें क्षतिग्रस्त तो नहीं कर दिया। आशंका थी कि तुम कहीं इस रूप में तो वापस नहीं मिलोगी कि मृत पायी जाओ। शकुन मनाकर ही तुम्हें वापस प्राप्त किया था। तुम्हें पाकर कैसा संयोग हुआ है शब्द-रूप में नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना जरूर कह सकता हूँ कि आज ही एक साथी ने मुझे यह बधाई दी है कि अब तो रातें आराम-सुख से कटेंगी।

हास्य
तथा व्यंग

क्यू में खड़ा आदमी

ओम अरोड़ा

जब देश आज़ाद हुआ था तो एक खेल हुआ था, जिसको 'म्युजिकल चेयर' कहते हैं। इस खेल में थोड़ी-सी कुर्सियां होती हैं और बहुत सारे आदमी होते हैं। संगीत बजना शुरु होते ही सब लोग कुर्सियां लेने के लिए दौड़ते हैं। जो ज्यादा फुर्तीले और चुस्त होते हैं वे कुर्सियां दबोच लेते हैं, शेष लोग खड़े ताकते रह जाते हैं। भारत में जब आज़ादी का संगीत बजा तो यही खेल हुआ। जो चुस्त और चालाक थे उन्होंने कुर्सियां दबोच ली और बाकी सारा देश टाँगो के भार खड़ा रह गया। जिन्होंने कुर्सियां दबोच ली वे आराम से बैठ गए और कसम खा ली कि सारी उम्र इन्ही कुर्सियों पर बैठे रहेंगे और कोशिश करेंगे कि मौत के बाद भी कुर्सी उनके साथ जाए ताकि स्वर्ग या नर्क मे बैठने का कोई झंझट न रहे। जो लोग (यानी सारा देश) खड़े थे उन्हे उन्होने आदेश दिया कि वे 'क्यू' बनाकर खड़े हो जाएँ और तब तक खड़े रहें जब तक आज़ादी नम्बर दो नहीं मिल जाती और नई म्यूजिकल चेयर का खेल नहीं होता।

इस प्रकार उस महान् देश मे 'क्यू' की महान परम्परा की शुरुआत हुई, और वह परम्परा अभी तक बरकरार है। कुछ लोग राशन की क्यू मे खड़े हैं, तो कुछ लोग क्यू मे इसलिए खड़े हैं कि उन्हे उस बस का इन्तज़ार है जो उन्हे ऑफिस मे ले जाएगी। कुछ लोग क्यू मे खड़े रहकर सिनेमा का टिकट कबाड़ना चाहते हैं। ऐसे लोग बड़े मज़ेदार किस्म के होते हैं। वे लोग छब्बीस साल से केवल इसीलिए क्यू मे खड़े हैं कि तीन घंटे आराम से कुर्सी पर बैठकर खयाली दुनिया देखकर काट सकें। क्यू मे तपस्या करने के बाद इन लोगों को ऐसी दुनिया दिखाई जाती है जिसमे एक क्लर्क के पास कार होती है और एक मजदूर के पास बढ़िया फ्लैट होता है। इन सब किस्म की क्यूओं मे सबसे लम्बी क्यू रोज़गार-दिलाऊ दफ्तर के आगे लगी हुई है। इस क्यू की लम्बाई नापने के लिए देश-भर के नेता और आकड़ेबाज लगे हुए हैं, पर अपने-आपको असफल पा रहे हैं। वे जितना इस क्यू को सुबह से शाम तक नापते है उतनी ही वह रात-रात मे

टाँगों पर खड़ा रहता है और फिर बारी-बारी से दाहिनी और बायीं टाँग पर खड़ा होना शुरू हो जाता है और यह क्रम तब तक चालू रहता है जब तक कि खड़ा होनेवाला या तो क्यू के अन्तिम सिरे पर नहीं पहुँच जाता या बेहोश होकर गिर नहीं जाता। अगर क्यू में कोई आदमी बेहोश होकर गिर जाता है तो उसके पीछे खड़े लोगों को बड़ी खुशी होती है, क्योंकि क्यू में खड़ा प्रत्येक आदमी मन ही मन यह प्रार्थना किया करता है कि हे भगवान् ! मेरे आगे खड़े सब लोगों को ठिकाने लगा दे।

मुफ्त

○

[illegible]

आजकल मैं बाजार से बहुत सी वस्तुएँ मुफ्त ले आता हूँ। अगर साबुन की एक टिकिया की जरूरत हो तो टूथपेस्ट की दो बड़ी ट्यूब खरीद लेता हूँ। साबुन साथ मुफ्त मिल जाता है। [illegible] ब्लेड की [illegible] मुफ्त लेना चाहता हूँ तो शेविंग क्रीम का बड़ा पैक का [illegible] खरीदने से काम बन जाता है। [illegible] की जरूरत हो तो [illegible] के बड़े पैक के साथ मिल जाता है। [illegible] की जरूरत हो तो [illegible] नहीं करता, [illegible] खरीद-कर प्राप्त कर लेता हूँ। [illegible] यह कि [illegible] को छोड़कर आवश्यकतानुसार आवश्यकता की वस्तु को मुफ्त प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते कि आप पर्याप्त मात्रा में अनावश्यक वस्तुएँ खरीदने का साहस रखते हों। और फिर अनावश्यक भी क्या है? जो वस्तु आज अनावश्यक है, वह कल आवश्यक बन सकती है। यदि आप कुँआरे होते हुए भी बेबी-फूड का बड़ा डिब्बा [illegible] प्राप्त करने के लिए खरीद लेते हैं तो चिन्ता की क्या आवश्यकता है? आखिर कल को आपकी शादी तो होगी ही और शादी होगी तो बच्चे भी होंगे और आपका बेबी-फूड खरीदना सार्थक हो जाएगा। इससे एक लाभ यह भी होगा कि बेबी-फूड के डिब्बे पुराने होकर बेकार हो जाने के भय से आप जल्दी ही शादी करवा लेंगे।

मेरा तो मुफ्त के प्रति मोह इतना बढ़ गया है कि मैं केवल वही वस्तुएँ खरीदता हूँ, जिनके साथ कुछ न कुछ मुफ्त मिले। दूकानदार से सबसे पहले यही पूछता हूँ कि फलां वस्तु के साथ क्या मुफ्त मिल रहा है? अगर किसी वस्तु के साथ कुछ भी मुफ्त नहीं मिल रहा हो तो उसकी खरीदारी तब तक के लिए स्थगित कर देता हूँ, जब तक कि उस वस्तु का निर्माण करनेवाली कम्पनी कुछ मुफ्त देने की योजना चालू नहीं करती। इस प्रकार काफी मितव्ययता हो [illegible]ती है। एक लाभ और भी है, मुफ्त वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए की जाने [illegible] खरीदारी से संग्रह भी हो जाता है और भविष्य की चिन्ता नहीं रहती।

उदाहरण के लिए, मेरे पास पिछले दिनों चली मुफ्त योजनाओं के परिणाम-स्वरूप कपड़े धोने का इतना पाउडर इकट्ठा हो गया है कि अब मुझे आनेवाले दस साल तक कपड़े धोने का पाउडर खरीदने की आवश्यकता नहीं है।

मेरी पत्नी का विचार है कि मुफ्त के चक्कर में मैं न केवल अनाप-शनाप वस्तुएँ खरीद लाता हूँ बल्कि उनके पैसे भी ज्यादा दे आता हूँ। पिछले दिनों मैंने टैल्कम पाउडर के दो डिब्बे खरीदे जिनके साथ पूरे तीन ब्लेड मुफ्त मिले थे। पत्नी का कहना है कि ब्लेड मुश्किल से पचास पैसे के होंगे जबकि पाउडर का मूल्य मैं एक रुपया ज्यादा दे आया। वह ऐसा सोचती है क्योंकि उसे मुफ्तवादी दर्शन का ज्ञान नहीं है। मुफ्तवादी दर्शन के अनुसार महत्त्व इस बात का नहीं है कि पाउडर की कीमत कितनी ज्यादा लगी बल्कि महत्त्व उस खुशी का है जो तीन ब्लेड मुफ्त प्राप्त होने पर होती है। यह खुशी कुछ वैसी ही होती है जैसी किसी जेबकतरे को जेब सफलतापूर्वक काट लेने पर होती है। बाद में चाहे उसे पता चले कि वह उसकी अपनी ही जेब थी।

जिस वस्तु के साथ मुफ्त प्राप्त होने का आभास जुड़ा हो, उसके उप-भोग में जो आनन्द प्राप्त होता है, वह खरीदी हुई वस्तु में दुर्लभ है। मुफ्त मिली हुई साबुन की टिकिया से जब मैं स्नान करता हूँ तो लगता है, महँगाई और दुकानदारों की ठगने की आदत मैल बनकर बह रही है। परोपकार साबुन के झागों के रूप में सर्वत्र व्याप्त रहा है। साबुन मुफ्त देनेवाली कम्पनी की कीर्ति की भीनी-भीनी सुगन्ध स्नानघर के वातावरण में फैल रही है। इस प्रकार की अनुभूतियाँ केवल मुफ्त के साबुन के उपयोग से ही प्राप्त की जा सकती हैं। महँगाई के इस जमाने में खरीदी हुई साबुन से तो आँखें चिरमिराने लगती हैं और शरीर में जलन शुरू हो जाती है। विज्ञापनों में आपने अच्छे-भले लोगों को रद्दी वस्तुओं की प्रशंसा करते हुए देखा होगा। वास्तव में कम्पनी उन्हें वे वस्तुएँ मुफ्त देती है इसलिए उन्हें इनमें इतने गुण दिखाई देने लगते हैं।

मुझे काउंटर पर रखी किसी वस्तु पर जब भी 'मुफ्त' लिखा हुआ दिखाई देता है तो जी करता है उसे उठाकर सिर पर पाँव रखकर भाग जाऊँ लेकिन अपनी इस आदिम इच्छा को दबाकर उस वस्तु का दाम पूछता हूँ, जिसके साथ 'वह' मुफ्त मिल रही है। कई बार यह देखकर बड़ी परेशानी होती है कि जो मुफ्त मिल रहा है और जिसके लिए पैसे देने पड़ रहे हैं, दोनों में कोई तालमेल नहीं है। सोचिए, चाय के साथ रूमाल का क्या मेल है? हाँ, चाय को कपड़ों पर गिराकर रूमाल से पोंछने का इरादा हो तो बात अलग है। टूथपेस्ट के साथ नहाने का साबुन देने की क्या तुक है?

शायद कुछ न कुछ तुक होती तो जरूर है। कई बार यह तुक जरा बाद में समझ में आती है। एक बार कपड़े धोनेवाले पाउडर के डिब्बे में से एक हिसाब

तरक्की देखकर जलते हैं। चारों ओर से हम पर फिक़रे कसे जाने लगे। हमारी दाढ़ी ने हमारे साथ कुछ वैसा ही किया जैसा कि महाकवि केशव के साथ उनके श्वेत केशों ने किया। हमारे दु:खी हृदय से कविता बरबस फूट पड़ी—

'कुशल' दाढ़ी अस करी, जस अरिहु न कराय।
चन्द्रमुखी मृगलोचनी, गुण्डा कहि-कहि जाय॥

यदि केशवदास इस समय जीवित होते तो हम उन्हें देखकर अपना दु:ख कम कर लेते और वह हमें देखकर। किन्तु आज हम इस निष्ठुर संसार में अपना दु:ख अकेले ही सह रहे हैं। लोग हमें न जाने क्या-क्या कहने लगे। हमें डाकू, गुण्डा, आवारा, हिप्पी, लफंगा, फिलॉसफर आदि की डिग्रियाँ ऐसे मिलने लगीं जैसे कि लोगों को आज 'पद्मश्री' की उपाधि मिल रही है। हमने मन को यह कहकर बहलाना चाहा कि "कुछ तो लोग कहेंगे। लोगों का काम है कहना।" पर ऐसा कब तक करते! आखिर तंग आकर हम आईने के सामने जा खड़े हुए सेल्फ-एनेलिसिस करने। आईने में हमें एक चेहरा नजर आया—परेशान-सा पर भोला-भाला। हमें वह चेहरा देखकर उस पर तरस आने लगा। कुछ देर तक हम ऐसे ही देखते रहे। तभी अचानक ही वह चेहरा गायब हो गया और हमें गुण्डे का चेहरा नजर आने लगा। फिर आईने में चेहरे बदलते रहे, केलिडोस्कोप की डिजाइन की तरह। हमें आईने में नजर आने लगे सुकरात, नानक, कबीर, अब्राहम लिंकन, रवीन्द्रनाथ टैगोर, पुरुषोत्तमदास टंडन, विनोबा भावे, डॉक्टर जाक़िर हुसैन, जार्ज बर्नर्ड शॉ, अज्ञेय और न जाने कौन-कौन।

हम गहरे सोच में डूब गये। हम सोचने लगे क्या ये सब महान् व्यक्ति डाकू और गुण्डे थे! हमें याद आया कि अब्राहम लिंकन ने दाढ़ी रखना एक छोटी-सी बालिका का सुझाव मानकर शुरू किया। बालिका ने उन्हें पत्र में लिखा था कि यदि वह दाढ़ी रखें तो उनका व्यक्तित्व काफी प्रभावशाली लगेगा क्योंकि उनके गाल पिचके हुए थे। लिंकन को उस बालिका का सुझाव पसन्द आया और उन्होंने दाढ़ी बढ़ाई। दाढ़ी बढ़ने के बाद उनका व्यक्तित्व वास्तव में काफी प्रभावशाली लगने लगा। कुछ लोग भारतीय लोगों से अत्यधिक घृणा करते हैं। घृणा करने के बहुत से कारणों में एक कारण यह भी है कि हम भारतीय लोग दूसरों के व्यक्तिगत जीवन में दखल करते हैं। यदि आपसे ही लोग अत्यधिक व्यक्तिगत प्रश्न करना शुरू करें तो आप भी बोर हो जायेंगे। मुझसे भी लोग इन्कमटैक्स ऑफिसर की तरह प्रश्न करने लगे, "आपने अचानक ही दाढ़ी बढ़ाना शुरू क्यों किया? क्या आप कुछ मनौती कर रहे हैं—पुत्र पाने की, पुस्तक छपने की, ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने की, पद्मश्री पाने की या फिर राष्ट्रीय पुरस्कार पाने की?" हम इतने प्रश्नों से इतने तंग आ गये कि हमने

निश्चय किया इन प्रश्नों को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म करना। जब एक सज्जन ने हम से दाढ़ी के बारे में प्रश्न किया तो हम बोले—

"वास्तव में हम एक सर्वे कर रहे हैं।"

"सर्वे? कैसा सर्वे?"

"इस सर्वे में हम यह ज्ञात करेंगे कि इस नगर में मूर्खों की संख्या कितनी है।"

"मूर्खों की संख्या आप कैसे ज्ञात करेंगे?"

"बड़ा सरल-सा उपाय है। जो भी हमसे यह प्रश्न करता है कि हमने दाढ़ी क्यों रखी, हम उसका नाम तुरन्त मूर्खों की लिस्ट में लिख लेते हैं। जब पूरे मूर्खों की...."

वह सज्जन पूरी बात सुने बिना ही ऐसे गायब हुए जैसे कि कर्जदार महाजन को देखकर गायब हो जाता है। जब एक अन्य सज्जन ने इसी प्रकार हमसे सवाल किया तो हमने उत्तर भी सवाल में इस प्रकार दिया—

"आपने यह साफा क्यों पहना हुआ है?" प्रश्न का उत्तर प्रश्न में पाकर वह घबराये। फिर कुछ संयत होकर बोले, "यह तो अपनी-अपनी 'लाईकिंग' है।"

"तो अपनी भी 'लाईकिंग' है दाढ़ी बढ़ाना।"

वह अपना-सा मुंह लेकर चले गये।

किन्तु जैसे हमने सबको काटा, पत्नी को नहीं काटा जा सकता था। हमारी एक वाक्य ने मदद की जो कि हमने किसी पत्रिका में पढ़ा था। इस वाक्य ने रामबाण का काम किया और वह फिर कुछ न बोलीं। वह वाक्य था, "दाढ़ी तथा मूंछें अच्छी बुद्धि की तरह हैं जो कि मनुष्य को समय के पूर्व नहीं आतीं और महिला को बिलकुल ही नहीं आती।" इसके बाद मुझे किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा और आज भी मेरी दाढ़ी सलामत है।

सालियाँ

□

अरनी रॉवर्ट्स

अगर दुनिया मे मैं (और हो सकता है आप भी) अगर किसी से डरता हूँ तो वे तीन चीजें हैं—पहली हैं श्रीमतीजी, जो जन्म-जन्मान्तर के लिए गले बँध गई हैं; दूसरी हैं सालियाँ यानी उनकी छोटी-बड़ी बहनें और तीसरे हैं मेहमान—जो बेमौसम के बादल की तरह कभी भी बरस पड़ते हैं। श्रीमती जी का केस सबसे पॉवरफुल है—उठते-बैठते, खाते-पीते, हर समय उनकी निरीक्षक गिद्ध-दृष्टि हमारा पीछा इस प्रकार करती है जैसे हम कोई स्मगलर हैं और वह इटेलीजेन्स डिपार्टमेंट की कोई सी० आई० डी०। गिद्ध की एक बार ऊँचे आकाश में उड़ते हुए किसी मरे हुए पशु पर नजर न पड़े, सम्भव है—पर हमारी 'वह' यदि दिन में गिद्ध-दृष्टि रखती हैं तो रात्रि में उल्लू-दृष्टि—और इन दृष्टियों से मेरी कोई हरकत भला छिपी रह सकती है ? असम्भव।

अब आप स्वयं सोच सकते हैं कि जब हमारी श्रीमती ही इतनी गजब की होम-इन्टेलीजेन्स डिपार्टमेंट की गिद्ध-दृष्टि-निरीक्षिका हैं तो उनकी बहनें और हमारी सालियाँ कैसी खौफनाक और खतरनाक होंगी। न जाने किस बुद्धिजीवी ने इनका नाम 'सालियाँ' रख दिया वरना मेरे जैसा ऐक्सपीरियेन्स्ड भुक्त-भोगी तो इनका नाम 'बिजलियाँ' रखता। जी हाँ, ठीक ही नहीं, सेंट-परसेंट ठीक फरमा रहा हूँ—बिजली से भी खतरनाक हैं ये। बिजली झटका देती है। ये पछाड़ देती हैं—ऐसी कि हड्डी-पसली एक हो जाय। आपने बिजली के झटके अवश्य ही खाये होंगे, क्योंकि बिजली और साली दो ऐसी चीजें हैं जो कभी नहीं बख्शतीं—अगर इनकी पकड़ में आ जायो तो। बिजली का झटका आप आधा घंटे में भूल सकते हैं पर सालियों का झटका जिन्दगी-भर याद रहता है—कौन जाने मर जाने के बाद भी याद रहता होगा।

आइये, हमारी सालियों से इन्ट्रोडक्शन हो जाये। हाँ, जरा सम्भलकर क्योंकि हमारी सालियों की संख्या सुनते ही झटका लगेगा और सोच लीजिए कि जब उनकी संख्या सुनते ही आपको झटका लग सकता है तो हम जो उनके

जीजा हैं जो अकसर उनके चक्रव्यूहों से घिर जाते हैं और उनके निशानों का टारगेट बनते हैं तो हमारी क्या स्थिति होती होगी—अनडिफाईनेबल।

मैं सोचता हूं अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुसना तो कम से कम जानता ही था चाहे निकलना उसे न आता हो। पर भाई साहब, हमारी सालियों का चक्रव्यूह अजीब ही है—उस-जैसे दस अभिमन्यु फँसकर चक्कर खा जायें। यह चक्रव्यूह हमारी ओर स्वतः ही बन जाता है और उस समय हमें अपनी स्थिति ठीक ऐसी मालूम होती है जैसे मकड़ी के जाले में कीड़े की होती है। वहाँ तो कीड़े को सिर्फ एक ही मकड़ी से संघर्ष करना होता है पर यहां तो हमें कई सालियों से पाला पड़ता है सीधा! ठहरिये, जरा मैं पसीना पोंछ लूँ और हाँ, मैं कुछ हांफने भी लगा हूँ—जरा साँस पर काबू पा लूं।

हाँ, तो मैं अपनी सालियों का इन्ट्रोडक्शन दे रहा था। अब तक आप भी जरा संख्या से लगनेवाले झटके के लिए तैयार हो गये होंगे···जी हाँ—हमारी सात सालियाँ हैं—पूरी सात, एक भी कम नहीं। लगा न आपके झटका! खैर, ये झटके तो लगते ही रहते हैं, हमारे लिए इनकी कोई इम्पोर्टेन्स नहीं रह गई है। इन झटकों के अलावा दिल के दौरे पड़ते हैं और साथ ही मुंह की खानी पड़ती है। किस्मत की मार खानी पड़ती है, और जाने क्या-क्या खाना पड़ता है।

हमारी सबसे बड़ी साली का नाम है कुमारी फूलकुमारी और उनका वजन दो मन के लगभग है। छोटी-मोटी चारपाई और साधारण कुर्सी उनका भार वहन करने में अपने आपको असमर्थ पाती हैं। वजन तोलनेवाली मशीन पर उनका वजन तोलने के बाद 'आउट ऑफ ऑर्डर' की तख्ती लगा दी जाती है। इसीलिए वजन तोलनेवाले उनसे कुछ चार्ज करने के बजाय उनको चार्ज देना पसंद करते हैं और कहते सुनाई पड़ते हैं, 'बहन जी, जरा कृपा करना गरीब पर··· और इस मशीन पर···' फूलकुमारी की सबसे प्रिय हॉबी है पकौड़े, कचौड़ी और गोल-गप्पे खाना। छोटा-मोटा खोमचा तो देखते-देखते ही खाली हो जाता है। वैसे उनकी सेहत का राज ही गोल-गप्पे हैं।

हमारी दूसरी साली हैं कुमारी रूपवती। बस तवे के रंग से बहुत अधिक नहीं, थोड़ी-सी ही अधिक हैं—यों समझिये उन्नीस-बीस का अन्तर है। रंग पक्का है। कुमारी रूपवती से जब भी मिलना चाहे वह ड्रेसिंग टेबुल के सामने अपनी अल्हड़ जवानी को आईने में निहारती या सौन्दर्य निखारने का कोई न कोई नुस्खा पढ़ती या तैयार करती पायेंगी। महीने में तीन-चार दर्पण तोड़ देना तो उनके लिए मामूली बात है। पाउडर और क्रीम उनके लिए थोक से आता है। जब-जब अपनी शक्ल निहारते हुए हाथ से गिरकर दर्पण टूटा है, हमने आह भरते हुए कहा है—"कमबख्त दर्पण भी सौन्दर्य देखकर जल गया।" और इस फिकरे पर वह ऐसे शरमाई हैं जैसे सचमुच यही बात रही हो।

हमारी तीसरे नम्बर की साली साहिबा का नाम है कुमारी शांति। कुमारी
शांति और हमारी श्रीमती जी की अंडर में मानी है। ये साली साहिबा कभी
शांत नहीं रहतीं। विविध-भारती भी चौबीस घंटों में बारह घंटे तो खामोश रहती
ही होगी पर शांतिदेवी का माउथपीस सुबह सात बजे से जो चलता है तो
रात के ग्यारह बजे ही उनका टीन पाठ होता है। किसी खबर को अखिल
है। इन साली साहिबा को हम 'संवाददाता' कहते हैं। हमारा मतलब है 'स्टेट्स
मैन', 'हिन्दुस्तान टाइम्स,' 'टाइम्स ऑफ इंडिया' और 'इंडियन एक्सप्रेस' के
संवाददाताओं ने तो अपने-अपने क्षेत्र निर्धारित कर रखे हैं, पर कुमारी शांतिदेवी
तो हर कूचे और गली में होनेवाली वारदातों और घटनाओं का पूरा-पूरा रिकार्ड
रखती है। मसलन, कौन किससे प्रेम कर रहा है, किस सास-बहू में चल रही
है, किस की बहू किसके मर्द से आँखें लड़ाती है, कौन बदचलन है, किसके
यहाँ बच्चा होनेवाला है, कौन मर गया और कौन पैदा हो गया—एक-एक
खबर इस ब्यूरो से प्राप्त की जा सकती है।

चौथे नम्बर की साली साहिबा हैं—कुमारी रागिनीदेवी। खुदा जाने
किस कमबख्त ने उनके राग की प्रशंसा कर दी थी, तभी से उन पर गाने-बजाने
का भूत सवार रहता है। एक कमरे में 'संवाददाता' साली अपने पुराण सुनाती हैं
तो दूसरे कमरे में रागिनीदेवी का गर्दभ-आलाप चलता है। क्या आवाज
साहब, बिरहा गाते समय तो फूट-फूटकर व चीख-चीख रो उठती हैं—और इस
आलाप को एक किलोमीटर दूर तक आसानी से सुना जा सकता है। यह तो ठीक
है कि हमारी ससुराल के पास में कहीं कोई कुम्हार नहीं रहता वरना रोज ही आफत
रहती कि···समझ गये होंगे आप। हर माह रागिनीदेवी के साज, सुधरकर
आते रहते हैं। सितार-वॉयलिन के तार तोड़ने में उनकी निपुणता देखते बनती
है। कई बार पतले तार का कुछ काम पड़ता है घर में तो वह झट से सितार
से तोड़ लेती हैं। इसको कहते हैं सूझ-बूझ। मजा तो उस दिन रहा था जब उनके
तबले पर फूलकुमारी गलती से उसे स्टूल समझकर बैठ गई थी।

हमारी तीन सालियाँ छोटी हैं पर क्वालिफिकेशन्स उनमें भी कम नहीं
है।

पाँचवीं नम्बर की साली साहिबा को गुड़िया बनाने का बेहद शौक है।
कई बार वह अपने इस शौक के लिए काफी बलिदान कर डालती है। अपनी न
फ्रॉकों, नये दुपट्टों आदि का उपयोग गुड़ियों की साड़ी-ब्लाउजों में कर डालती
है। हर महीने फिर उनकी गुड़िया की शादी···यानी हमारे दस रुपयों का खून
छठी नम्बर की साली को रोना बहुत प्रिय है। हँसना उनके लिए महज
एक मूर्खता है। इतना कमाल का रोती हैं कि बस अच्छे-अच्छे चुप करानेवाले
स्पेशलिस्ट भी सिर पर हाथ धरकर रह जाते हैं। यदि उन्हें हम एक टॉफी देकर

चुप कराना चाहे तो वह दूने जोर से रोने लगती हैं, दो टॉफी दें तो चौगुने वेग से रोने लगती हैं···और यह तीव्रता हर नई टॉफी के बाद बढ़ती जाती है और बारह तक आकर नॉर्मल होती है।

हमारी अंतिम साली को देश की मिट्टी से बहुत प्यार है। मिट्टी खाना प्रिय शौक है उनका। आप चाहे तो रसगुल्ले, टॉफियाँ, गोलियाँ, खिलौने, लड्डू—कुछ भी दें दें। दुनिया की कोई भी चीज लाकर दे दें पर वह कुछ नहीं छुएंगी··· उनकी प्रिय वस्तु तो मिट्टी है। जिनकी जीर्ण-शीर्ण काया का राज है ताजी मिट्टी का सेवन, यदि उनको इसको खाने से रोका जाए तो वह नम्बर छ को पूर्ण सहयोग देने लगती हैं रोने में।··· अच्छा साहब, इजाजत दें···तैयारी करनी है··· कल 'उनको' मायके और हमें ससुराल जाना है। ईश्वर से हमारे लिए प्रार्थना कीजिए।

थाने से बुलावा

□

रघुनाथ 'चित्रेश'

मैं अपने गाँव, परिवार और घर से डेढ सौ किलोमीटर दूर एक गाँव में अपने किराये के मकान के बाहर दरवाजे पर खड़ा था। अन्दर किताब पढ़ते-पढ़ते सुस्ती-सी छाने लगी थी। सोचा, जरा बाहर खुली हवा में ताजा हो लूँ।

मैंने देखा, थोड़ी ही दूर पर मि० खान, जो मेरे साथ ही इतिहास के वरिष्ठ अध्यापक हैं तथा एक सिपाही साथ-साथ चले आ रहे हैं। मैंने सुना मि० खान ने उस सिपाही से कहा, "ये ही हैं वह जिनके बारे में तुम पूछ रहे थे।" और मेरी ओर इशारा कर दिया।

मि० खान के इस सम्बोधन से मेरा कलेजा धक् से रह गया, आखिर यह सिपाही मुझे क्यों पूछ रहा था। मैं किसी अप्रत्याशित आशंका से घबरा गया।

मैंने एक सरसरी निगाह अपने आसपास चारों ओर घुमाई। मैंने देखा मुहल्ले की कई औरतें जो अभी-अभी अपनी बातों में मशगूल थीं, अनायास कभी मुझे और कभी उस सिपाही को बड़े आश्चर्य से देख रही थीं।

वे दोनों मेरे नजदीक आ चुके थे। मि० खान ने कहा, "यह तुम्हें स्कूल में ढूंढ रहा था पर मैं जानता था, साढ़े पाँच बज चुके हैं, तुम स्कूल से जा चुके हो। अत: मैंने इसे घर के लिए कह दिया था। यह घर नहीं जानता था अत: मुझे आना पड़ा।"

मैं दोनों की ओर देखता रहा। सिपाही ने पूछा, "क्या आपका ही नाम चेतन है ?"

मेरा कलेजा मुँह को आ गया। मेरी सारी चेतना लुप्त होती-सी प्रतीत हुई और एकबारगी मैंने अन्दर-ही-अन्दर अपने जीवन के सम्पूर्ण अतीत को कुरेद डाला पर कहीं कोई ऐसी बात या घटना याद नहीं आयी जिससे पुलिस मेरे बारे में छानबीन करे। मेरे मुँह से बोल नहीं निकल रहा था। वह मेरा मुँह ताक रहा था। मैं नहीं चाहता था कि कोई ऐसी-वैसी बात बाहर कह दूँ नहीं तो

मुहल्ले की ये औरतें नमक-मिर्च लगाकर बात का बतगड़ बना देंगी और आसमान सिर पर उठा लेंगी।

मैंने उसके प्रश्न का जवाब देने की बजाय कहा—"आप लोग अन्दर आइये ना। मि० खान, आपको बड़ा कष्ट हुआ।" और मैं बिना उनकी प्रतीक्षा किये स्वयं ही अन्दर की ओर चल दिया जिससे उन्हें भी विवश होकर अन्दर आना पड़ा।

मैंने उन्हें अपने कमरे में बैठाया। मेरा दिल बैठा जा रहा था, फिर भी 'आपड़े का क्या मोल'। साहस करके पूछा—

"हाँ, तो अब कहिये आप। मेरा ही नाम चेतन है। क्या बात है?"

आप ही यहाँ चित्रकला के वरिष्ठ अध्यापक हैं?" उसने पूछा। मैंने कहा, "हाँ।" तो वह बोला—

"जी, बात यह है कि मैं सुबह से ही आपकी तलाश में हूँ। मैंने पहले प्राइमरी स्कूल में, फिर मिडिल स्कूल में—सब जगह पूछा। फिर बाद में पता लगा कि आप तो हायर सेकण्डरी स्कूल में हैं। अन्त में वहाँ पहुँच गया। वहाँ से पता लगा कि आप वहाँ से निकल चुके हैं तो मैं इन साहब को लेकर यहाँ आया हूँ।"

वह कहे जा रहा था और मुझ पर एक अनजाना भय व्याप्त होता जा रहा था।

उसने फिर कहा—"मुझे सी. आई. साहब ने भेजा है, आपको थाने में बुलाया है।"

उसका अन्तिम वाक्य सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। उसका एक-एक शब्द हथौड़े की तरह मेरे दिल-ओ-दिमाग पर चोट पहुँचा रहा था। मेरा सारा शरीर पसीने से तर-बतर हो गया था। मैंने मि० खान की तरफ देखा लेकिन वे हमारी बातों की ओर ध्यान दिये बिना ही हमेशा की तरह अपनी ही धुन में बैठे आलपिन से अपने दाँत कुरेद रहे थे।

मैंने हिम्मत करके पूछा—"आखिर बात क्या है? मुझे वहाँ क्यों बुलाया है?"

उसने कहा—"यह तो वहाँ चलकर ही पता लगेगा, साहब। मैं क्या बता सकता हूँ इस बारे में। हाँ, इतना जरूर कह सकता हूँ कि हेड ऑफिस से डाक में एक बहुत बड़ा लिफाफा आया था। उसके बाद कागजात देखकर साहब कुछ सोचने लगे, और मुझे आपको बुलाने भेजा है। शायद कुछ मामला है।"

मैंने पूछा, "क्या साथ चलना जरूरी है? मैं कुछ देर बाद वहाँ पहुँच जाऊँ तो कैसा रहे?"

सच तो यह था कि मैं उसके साथ-साथ नहीं जाना चाहता था।

पर सिपाही तो सिपाही ही है। उसने तपाक से कह दिया, "नहीं साहब, अब आपको अभी मेरे साथ ही चलना पड़ेगा। मैं सुबह से आपको ढूंढ रहा हूँ। अब भी आपको लेकर नहीं पहुँचा तो साहब मुझ पर बरस पड़ेंगे और मेरी छुट्टी कर देंगे।"

मेरा बनियान पसीने से भीग गया था। मेरा मुँह फक्क हो गया था। मैं सोच नहीं पा रहा था आखिर बात क्या हो सकती है। मैंने आज तक कोई ऐसा काम किया नहीं, जिससे कि पुलिस तक की नौबत पेश आए। क्या मेरे वहाँ घर पर कोई घटना घट गई या किसी ने ईर्ष्यावश दुश्मनी से कोई झूठा आरोप लगाकर मुझे फँसाना चाहा है—आखिर बात क्या है, मैं अपने दिमाग पर काफी जोर लगा रहा था पर मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

खैर, जो होगा देखा जायेगा। मैंने हताश होकर कपड़े पहने और उसके साथ हो लिया।

मेरे यहाँ पुलिस का सिपाही देखकर मेरी मकान-मालकिन भी बाहर बरामदे में आ गई थी। मैंने चलते वक्त उसे देखा। उसकी आँखों में हजारों प्रश्न झलक रहे थे, मगर वह डर के कारण पूछ नहीं पा रही थी। मैं आगे बढ़ गया।

बाहर आते ही मि० खान ने कहा, "अच्छा तो अब मैं तो चलता हूँ।" और वह बिना हमारे उत्तर की प्रतीक्षा किये ही दूसरी ओर चल दिया। मैं शून्य निगाह से उस ओर देखता ही रह गया।

सिपाही जिसके हाथ में एक काला डण्डा था, अपनी तिरछी टोपी पहने बड़ी शान से मेरे आगे-आगे चल रहा था, मैं उसके पीछे-पीछे नीची निगाह किये अपने-आप में सिमटा-सा चला जा रहा था।

मैं छिपी-छिपी निगाह से देख रहा था कि सारे मुहल्ले की औरतें और बच्चे अपने-अपने घरों के बाहर निकल आये हैं और मुझे ठीक उसी तरह देख रहे हैं जैसे कोई बलि का बकरा बलि चढ़ाने हेतु देवी के मन्दिर की ओर ले जाया जा रहा हो।

कुछ दूर दो-तीन औरतें खुसुर-फुसुर कर रही थीं। वे बात कम और इशारे ज्यादा कर रही थीं। मुझे सौ तरह माना विश्वास था कि वे मेरे ही बारे में बातें कर रही थीं। मैं शर्म से गड़ा जा रहा था, मानो मुझ पर सौ घड़े पानी उँड़ेल दिया हो। मैं सबसे निगाह चुराता सिपाही के पीछे चला जा रहा था।

उस वक्त मेरी हालत उस चोर या हत्यारे से भी बदतर थी जिसने हजारों की चोरी की हो या किसी की हत्या की हो। क्योंकि उसने तो वह सब किया है और उसे अपने कृत्य पर गुमान हो सकता है अतः वह अपना सीना

तानकर बेधड़क चल सकता है। पर मैं ? मैंने तो कुछ भी नहीं किया। मैं किस बात पर गुमान करूँ या पश्चाताप। न चोरी, न डाका, न हत्या, न गबन—कुछ भी तो नहीं! मैं कैसे अपने दिल को समझाता कि मुझे थाने में क्यों बुलाया गया है। मैं आज तक इस गाँव में, स्कूल में, मुहल्ले में एक सम्माननीय और सभ्य व्यक्ति के रूप में जाना जाता हूँ। मैंने कभी अपने जीवन में भी पुलिस-थाना नहीं देखा था। मैं महसूस कर रहा था, कई लोगों की आँखें मुझे घूर रही हैं। वे हजारों प्रश्न करने को आमादा हैं, पर कोई डर से, कोई सम्मान से, कोई लिहाज से, कोई शर्म से, मुझसे कुछ भी नहीं पूछ पा रहा था।

सिपाही आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे चला जा रहा था। न वह मुझसे बात कर रहा था, न मैं उससे।

मेरे मस्तिष्क में उथल पुथल मच रही थी। विचारों में ज्वार-भाटे आ रहे थे। मेरे मानस में तरह-तरह के विचार पानी के बबूले की तरह उठते और विलीन होते जा रहे थे। मुझे ख़याल आया, हो सकता है उस दिन एक पुलिस-वाले ने एक खोमचेवाले का खोमचा सिर्फ इसलिए उलट दिया था कि बेचारा रास्ते में खड़ा रहकर मुझे खुल्ले पैसे दे रहा था। सच यह था कि पुलिसवाले को उसकी जेब-खर्ची नहीं मिलने से खोमचा उलट देने के कारण पुलिसवाले और उसके बीच कुछ कहा-सुनी हो गई थी। शायद वह बात आगे बढ़ गई हो और मुझे भी उसमें फँसा दिया गया हो। नहीं-नहीं! यह नहीं हो सकता है! याद आया, उस दिन उस मजदूर ने उस सेठ का गला इसलिए पकड़ लिया था कि वह सेठ उसे ठहराये अनुसार मजदूरी के पैसे नहीं दे रहा था और ऊपर से गालियाँ भी दे रहा था। मजदूर ने सेठ को धराशायी कर दिया। सेठ ने पैसे के बल पर पुलिस को बुला लिया और पुलिस बेचारे मजदूर को पकड़कर ले गई। मैं उस वक्त वहीं खड़ा यह दृश्य देख रहा था क्योंकि मैं उसकी दूकान पर सामान खरीदने गया था। हो सकता है उस सेठ ने गवाह में मेरा नाम लिखा दिया हो।

नहीं-नहीं! यह भी नहीं हो सकता। ओह, याद आया! जरूर वह बात होगी—उस दिन उस लड़की को उसकी ससुराल में ठोक-पीटकर आधी रात को घर से धक्के मारकर बाहर निकाल दिया था—सिर्फ इस बात के लिए कि उसका बाप गरीब था और उसने लड़के को दहेज में घड़ी और ट्रांजिस्टर नहीं दिया था। और सास को रेशमी जोड़ा नहीं पहनाया था। और मैंने एक पड़ोसी के नाते उसे स्टेशन तक ले जाकर टिकट दिलाकर उसके गाँव उसके बाप के घर पहुँचा दी।

पर उसमें मुझे डरने की क्या आवश्यकता है, मैंने कोई पाप थोड़े ही किया है।

एक बहन को दर-दर की ठोकरें खाने की बजाय बाप के घर ही तो पहुंचाया है। कोई उसका अपहरण तो किया नहीं ! इस तरह न जाने अतीत की कितनी घटनाएँ मेरे मानस-पटल पर उभरती और मिटती चली जा रही थीं पर कहीं मुझे वह सम्बन्ध नहीं मिल रहा था, जो सत्य हो।

इसी उधेड़-बुन में एक के ऊपर दूसरे विचारों को लादे अपने में खोया मैं चला जा रहा था। मुझे भान तब हुआ जब उस सिपाही ने अपने दोनों बूटों की ऐड़ों को मिलाकर 'खट्' से सेल्यूट मारा।

मैंने देखा सामने कुर्सी पर सी० आई० साहब बैठे हुए हैं। मुझे देखते ही वे उठकर खड़े हो गये और मेरी ओर हाथ बढ़ाते हुए बोले—

"हलो, आर्टिस्ट ! मिस्टर चेतन ! मैं आप ही का इन्तजार कर रहा था। मेरा आपसे पहले परिचय नहीं हो पाया था, पर मैंने आपकी तारीफ सुनी है।"

मैंने भी सकपकाते हुए अपना हाथ उनकी तरफ बढ़ा दिया। हाथ मिले। मुझे उन्होंने कुर्सी पर बैठने को कहा और घंटी बजाई। फिर बड़े रोब से कहा—

"रामसिंह, जल्दी से दो चाय ले आओ। चाय अच्छी और कड़क हो।"

मैं सहमा-सहमा-सा सामने कुर्सी पर बैठ गया। तब उन्होंने कहना शुरू किया—

"भई, माफ़ करना। मैंने सुना है आप अच्छे आर्टिस्ट हो। बात ऐसी है कि कल हमारे थाने का निरीक्षण है और मैं चाहता हूँ कि कुछ अच्छे सदाचारयुक्त शिक्षाप्रद वाक्य लिखे हुए चार्ट आप हमें बना दें, जो अपराधियों को सन्मार्ग पर लाने में प्रेरणा दे सकें तथा कुछ में पुलिस के कर्तव्य के बारे में लिखा हो तो बड़ी कृपा होगी।"

मैं हतप्रभ-सा देखता रह गया और जोर से अपने-आप हँस पड़ा। सी० आई० साहब मुझे देखते रह गये। मैंने जब अपनी सारी मनःस्थिति को बताया तो वे भी हँस-हँसकर लोट-पोट हो गये।

जब मैं वापस घर आया तो लोगों की भीड़ लग गई और उन्होंने मुझसे हजारों प्रश्न पूछ डाले।

अब आप ही कहिये, मैं क्या जवाब देता उन्हें !

विश्वम्भरप्रसाद शर्मा 'विद्यार्थी'

कूबड़ी झक गलतियों का गट्ठर ढो-ढोकर, अकड़कर-मकड़कर चल रही थी और दिखा रही थी कि मेरे कूब नहीं है। कूबी छिपाए अपनी कूब पर छिपाने से चीज छिपती नहीं। नाक की झक उसको सूंघकर बिना कुदाली सौ हाथ जमीन के नीचे से खींचकर निकाल लाती है।

आखिर असलियत निकल आती है चाहे कितना ही आडम्बर का लट्ठ मारकर उसको दबाओ, साली दस्त बनकर निकल आती है। यह सचमुच सुनकर पास खड़े हमारे मित्र महोदय सिकुड़ रहे थे। मैंने हँसकर कहा—"कहो! भाई साहब, दीपक तले अँधेरा कैसे ?"

वे बोले, "समझा नहीं।" "अजी ! ऐसी शीतल चांदनी में धूप का ऐनक कैसे ? कहीं बल्ब तो ऑफ नहीं है ?" पास में कुछ बदतमीज लड़कियाँ अपने फैशनेबुल अधनंगे कपड़ों में फिस-फिस कर हँस रही थीं। मैंने घूरकर कहा, "आपको क्या तकलीफ है ?" तड़ातड़ बोली, "जो आपको वही हमें।" पास में मेरा एक समझदार मित्र था। उसने कहा, "अबे ! किन छिनाल राँड़ों से सिर-फोड़ी करता है ! सारा सिर मथकर घी निकाल देंगी। ऊपर से पड़वायेंगी डण्डे। खिंचवा देंगी सौ तार सारे बदन पर गाता जायेगा तू सितार बनकर। चल, हट !" वे खिलखिला रही थीं।

काना मित्र अपनी मखौल देखकर होंठ चाट रहा था। मैंने ताजा व्यंग्य कसकर कहा, "कुछ लोग चीजों का उपयोग करते हैं स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए, कुछ करते हैं अपने खराब माल पर कूबड़ी झक का फैशनेबुल लेबल लगाकर बढ़िया दिखाने के लिए, पर कुछ तो उल्लू बरख करते हैं झक-झककर पूरी झक।"

आगे चलने पर कुछ जवान लड़के मुँह हिला-हिलाकर अधमरी बातें कर रहे थे। हँसी में लोट-पोट हो लटक रहे थे। हावभाव उनके बहरे थे, सब काम अधूरे थे। कुछ के अर्धकटे वस्त्र कान-कटे कुत्ते की तरह भौंक रहे थे। किसी

की टाँगों से उनके पैंट ऐसे चिपके पड़े थे जैसे घावों पर पट्टी। तीखे मुँह के जूते चल रहे थे पिचक-पिचककर। सिगार के धुएँ से छल्ले बनाते हुए चले जा रहे थे फैशन के गुलाम।

मैं शहर की नाक के एक छोर में घुसकर दूसरे छोर में जा रहा था। इतने में मेरा एक आधुनिक मित्र मिला और बोला, "कहो! कैसा रहा आगरा का घूमना?" मैंने कहा, "बड़ा अजीब।" "कैसे?" "मेरी अक्ल की तो ऐसी आरती उतरी कि एक जगह तो चढ़ावा लेते-लेते बचा।" इतने में हमारे मित्र का घर आ गया। अन्दर पहुँचते-पहुँचते बज गए बारह।

कमरे में सिर-कटे हिरन, मरे चीते, कटी घास के गुलदस्ते दीवारों पर कान पकड़कर लटक रहे थे। मैंने कहा, "अरे! तुमने अपने घर में अजायबघर खोल रखा है क्या?" वार्तालाप में और भोजन-कार्यक्रम में ही सूर्यास्त हो गया। आराम करने के लिए एकाएक मैं खाट पर लेटा ही था कि टन-टन की घंटी बजी। मैं चौंका। अन्दर से आवाज आयी, बल्ब ने आँखें खोलीं और एक औरत बोली, "हलो! अच्छा सुबह आ रही हूँ।" बल्ब के तमाचा जड़ते ही बल्ब सो गया। वह चल दी। मैं खाट पर कभी चढ़ रहा था, कभी उतर रहा था। दर-असल में मैं तो पड़ा ही था।

सुबह उठते ही मैंने राम-राम करना शुरू किया तो एक बच्चे ने मुझे डराते हुए कहा, "डोंन्ट डिस्टर्ब।" मैं उबक देखने लगा। इतने में मेरा मित्र आया और बोला, "बेड-टी लो, लैट्रिन जाओ, टूथपेस्ट करो। फिर हमें दूर पर चलना है।" मैं हैरान यह सब सुनकर। खैर।

बच्चे अपने बक्स खोल-खोलकर तरह-तरह के कपड़े निकाल रहे थे और कह रहे थे कि पापाजी, कपड़े फैशन के नहीं। लड़कियाँ तरह-तरह के केश-विन्यास करके आयीं।

भाई ने तो कान-कटे कपड़े पहने। मुँह पिचकाकर, गला भींचकर पंचम स्वर में सत्कार किया और बोला, "देखो! फैशन में रहना सीखो नहीं तो लोग बुरा समझेंगे। कुछ लोग पूछें तो सच मत कहना। अपने रोबदारी बात कहना, उनकी हँसी उड़ाना, आड़े वक्त टा-टा करना।" उन्होंने मुझे कहा, "भाई! बाहर बैठो। अभी आते हैं।" देखो आधुनिक व्यवहार का फैशन।

मैं सोच रहा था कि उस रंडी-मंडी कुबड़ी ने केवल राम का घर बिगाड़ा था। आज यह कलयुग में सारे देश को बिगाड़ देगी। मैंने अपने राम से कहा कि इस कुबड़ी भूत ने तो सबके धर्म-कर्म नष्ट-भ्रष्ट कर दिये।

मिस बनाना फैशन, कपड़े फैशन, चाल फैशन, बात फैशन और इस फैशन की भी फैशन आन्टी करमुँही कुबड़ी भूत। मैं बिना फैशन का आदमी पाँव की

साल पीछे का नमूना अपने गाँव के झोपड़ में रहता हूँ। लट्ठ लेकर कूबड़ी फैशन के बारे में लोगों को समझाता हूँ कि यह डायन सबके घर बिगाड़ देगी।

एक दिन यह भी सचमुच एक लकड़ी पर चढ़कर मेरे झोपड़े में आ गई। मैंने चिढ़कर कहा, "फैफा! बहन, राम-राम।" उसने कहा, "तुमको मेरा परिचय किसने करवाया?" मैं बोला, "रांड, तेरी मूरत कह रही है। परिचय की जरूरत ही क्या है?"

मेरे मरते-मरते यह नकटी सब जगह अपनी कुचालों से लोगों को बेडौल, नंगे बदन, बदसूरत बनाकर बेइज्जत करवा देगी। मैंने तो भगवान से मौत माँगी। मुझे तो मिल गई। मेरी खाट के पास बैठे मेरे बूढ़े साथी कह रहे थे कि इसकी तो सुधर गई, अपना क्या होगा?

भेजा-भक्षण

□

जगदीश सुदामा

लोग भेजा खाते हैं और बड़े चाव से खाते हैं, जैसे हमारा भेजा कोई भेजा न हुआ, प्लेट-भर नाश्ता हुआ। वैसे लोग भेजे का कई तरह से उपयोग करते हैं (उपयोग शब्द यहाँ जम नहीं रहा है, खैर...)। उदाहरण के लिए—लोग भेजा चाटते हैं जैसे उनके लिए हमारा भेजा कोई अवलेह हो।

ऐसे ही हमारे एक परम स्नेही मित्र हैं, जिनको अब मैं भेजा-भक्षक यह दूँ तो ज्यादा उपयुक्त होगा। मुझे कई भेजा-भक्षकों के सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, लेकिन उनकी सानी का एक भी नहीं पाया। वाह, क्या सफाई से भेजा-भक्षण करते हैं कि उनको देखते ही जी चाहने लगता है—एक अच्छी-सी तश्तरी में अपने भेजे को रखकर उनसे अनुनय-विनय की जाय—हे प्रभो! आप प्रेम से हमारा भेजा-भक्षण कीजिये।

भेजा-भक्षण भी एक कला है। कई लोग तो भेजे को बहुत ही बेरहमी से खाने लगते हैं। उन्हें यह भी ज्ञान नहीं होता कि भेजा-भक्षण किस समय किया जाना चाहिए, किस प्रकार का भेजा भक्षण के उपयुक्त होता है।

आप शायद कहेंगे—'हमारा भेजा मत खाइये।' लेकिन ऐसा कहकर आप एक शाश्वत सत्य से मुँह नहीं फेर सकते। रहा सवाल आपका भेजा खाने का, मैं नहीं खाऊँगा तो कोई दूसरा खायेगा। (कृपा कर गृहिणियाँ 'कोई दूसरे' का अर्थ अपने से न ले बैठें)।

कुछ लोग 'बफर डिनर' की तरह, दूसरों के भेजे का उपभोग करते हैं। सच पूछो तो ऐसे लोग बहुत 'बोर क्रिस्म' के हुआ करते हैं। भेजे जैसी सामग्री का उपभोग तो बहुत ही इतमीनान से होना चाहिए।

हाँ, तो मैं कह रहा था—हमारे परम स्नेही मित्र श्री भेजा-भक्षक इस विषय के अद्वितीय ज्ञाता हैं। सही मायने में वे ही एकमात्र भक्षणोपयोगी भेजे के पारखी हैं। वे रास्ते चलते भेजा नहीं खाते, और न ही बाजार में कहीं खड़े-खड़े ही भेजा खाते हैं। वे हमेशा 'फ्रेश' भेजे का उपभोग करने में ही विश्वास करते हैं। दिनभर की थकावट और परेशानी से शाम को भेजा जब तरावट

प्राप्त कर लेता है, तब वे महाशय जी मुहल्ले के किसी चबूतरे पर आराम से बैठकर हमारे भेजे को खाएँगे। (फिर भले ही हम उनको अपना भेजा खिला-खिलाते वहीं निढाल हो जाएँ।) जिस प्रकार तर माल सुस्वादु होता है, उसी प्रकार तर भेजा ही उनको अभीष्ट है।

आपने कभी सोचा ही नहीं होगा कि किसी का भेजा खाना कितना दुष्कर कार्य है। भेजा खाने के लिए सबसे पहले भेजामारी करनी पड़ती है, अर्थात् भेजा-भक्षक हमारे भेजे को सबसे पहले डाक्टरी भाषा में 'शून्य' कर देते हैं। तदुपरान्त वे भेजापच्ची करते हैं, अर्थात् हमारा भेजा पकाते हैं। संस्कृत में पच्-धातु पकाने के अर्थ में काम आता है, अर्थात् वे हमारे भेजे को अच्छी तरह पकाते हैं। जब हमारा भेजा 'पच्' जाता है, तब वहीं जाकर भेजा-भक्षण होता है।

आप कहेंगे—आखिर यह भेजा-भक्षण कब तक? हमारे परम स्नेही मित्र का कहना है कि जब तक सितार के कसे हुए तार की तरह सामनेवाले का भेजा, तुन्-तुन्-तुन् नहीं बोलने लग जाए, तब तक भेजा-भक्षण होता रहना चाहिए।

आप सोचते होंगे कि मैं आपका भेजा चाट रहा हूँ। वस्तुतः भेजा चाटने की क्रिया भेजा-भक्षण के बाद ही होती है। जिस प्रकार भाग पीने वाले रबड़ी खाने के पश्चात् दोना चाटते हैं, उसी प्रकार भेजा-भक्षक भी भेजा खाने के बाद ही हमारा भेजा चाटते हैं।

हमारे कई शुभचिन्तक मित्र, हमारा भेजा-भक्षण होता हुआ देखकर रुआँसे हो जाते हैं (आपको भी शायद दया आ गई होगी)। लेकिन सच मानिये, हमें तो अपने भेजे पर नाज है कि एक हृष्ट-पुष्ट स्वास्थ्य-वाला भेजा-भक्षक हमारे भेजे का भक्षण कर रहा है। अजी, वाजिब था, आज किसको इतनी फुरसत है कि वह हमारा भेजा खाए। कई बार तो हम ही भेजा-भक्षक की खुशामद करनी पड़ती है। अपना भेजा-भक्षण कराने के लिए चाय-पान इत्यादि से उनका समुचित सत्कार करना पड़ता है, तब कहीं जाकर वे हमारा भेजा-भक्षण करने के 'मूड' में आते हैं।

आपने कभी भेजा-भक्षकों का मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन नहीं किया होगा (भला आपको ऐसी फुरसत कहाँ?)। दो-चार भेजा-भक्षक किसी होटल में बैठकर आपस में एक-दूसरे का भेजा-भक्षण करते समय कि सामनेवाले के चेहरे (थोबड़े) पर भेजामारी का प्रभाव शुरू हो जाता है। इसके बाद धीरे-धीरे वह ही उसका भेजा पचता (पकता) जाता है, और जब भेजापच्ची का असर पड़ जाता है तो वे आपस में भेजा-भक्षण करके, चाय-नाश्ता करके खुश होकर भक्षण शुरू कर देते हैं।

संस्कृति का नया आयाम

हरगोविन्द गुप्त

फैशन के इस युग में खुशामद, चाटुकारिता जैसे शब्द पुराने पड चुके हैं। 'चमचागिरी' शब्द में जो 'ग्लैमर' है, वह इन शब्दों मे कहाँ ! चमचागिरी बडी तेजी से सफल जीवन का पर्याय बनती जा रही है। जी हाँ, चमचागिरी सीखिये, यदि आपको जीवन-रूपी 'रेस' में निरन्तर आगे बढ़ते रहना है।

यों यह कला नयी नही है। प्राचीन काल मे इसे खुशामद एवं चाटुकारिता की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। राजदरबारों के खुशामदो दरबारी और चाटुकार कवि इस कला के चमत्कारिक प्रभाव से भली-भाँति परिचित थे। आप ऐसे कवियों की काव्य-रचनाओं के पृष्ठ पलटते जाइये, उनकी यह कला उनकी रचनाओं में मूर्तिमन्त होती नज़र आयेगी। राजा अथवा सम्राट् परले सिरे का मूर्ख ही क्यों न हो, किन्तु इन कवियों की लेखनी की कृपा से वह समस्त गुणों एवं कलाओं का सागर बन गया।

चमचागिरी कलियुग की कामधेनु से कम नहीं है। आप चमचागिरी से होनेवाले लाभों की चिन्ता मत कीजिए। आपका कार्य है—श्रद्धा एवं भक्ति-भाव से चमचागिरी करते रहना। आप चमचागिरी शुरू तो कीजिए, फिर आप देखिये कि इस कला से उद्भूत लाभ आपकी सेवा मे स्वयं दौड़े आते हैं। ज्ञान की प्रत्येक शाखा के कुछ-न-कुछ निर्देशक सिद्धान्त होते हैं। चमचागिरी करते समय आपको भी इसके निर्देशक सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखना होगा और उन पर पूरी ईमानदारी से अमल करना होगा। यदि आप इस कला के सिद्धांतों पर ईमानदारी से अमल कर रहे हैं, तो ईश्वर ने चाहा इससे होनेवाली सम्पूर्ण कृपाओं से आप निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे। प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि चमचागिरी करते समय आप चेहरे पर इस प्रकार का भाव दर्शाइये कि आप जो कुछ भी बात कह रहे हैं, वह पूरी संजीदगी के साथ कही जा रही है। दूसरे, आप अपनी बातों के मध्य समय-समय पर इस बात को परोक्ष रूप से दोहराते रहिये कि आपके बराबर उनका (अर्थात् जिनकी चमचागिरी की जा रही है) शुभचिन्तक और कोई है ही नहीं (यों आप अपने

वे लोग विशेष भेजे खाने के बड़े शौकीन होते हैं। कई बार तो विशिष्ट भेजा-भक्षकों को एकत्र आमन्त्रित किया जाता है। दूतावासों पर, पक्के और कच्चे भेजों का जब वे मिला-जुला भक्षण शुरू करते हैं, तब इन्हें हर पाँच मिनट बाद पानी की 'डिमाण्ड' रहती है।

भेजा-भक्षण का इतिहास कितना प्राचीन है, यह तो अभी शोधगम्य है, किन्तु यह निर्विवाद है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इस देश में भेजा-भक्षण-कला का जितना विकास हुआ है उतना शायद ही किसी देश में हुआ हो।

आज, जबकि सांस्कृतिक दृष्टि से इस कला का महत्त्व बढ़ता जा रहा है, हम सब का यह परम पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि हम इस कला के विकास में अपना पूर्ण योगदान दें। जहाँ जो भी मिले उसका भेजा खाओ। मालिक हाकिम यदि आपसे कहे कि भेजा मत खाओ, तो आप तुरन्त हड़ताल कर दें, और फिर नारे लगायें—'भेजा खाना हमारा मूलभूत अधिकार है।'

संस्कृति का नया आयाम

□

हरगोविन्द गुप्त

फैशन के इस युग में खुशामद, चाटुकारिता जैसे शब्द पुराने पड़ चुके हैं। 'चमचागिरी' शब्द में जो 'ग्लैमर' है, वह इन शब्दों में कहाँ ! चमचागिरी बड़ी तेजी से सफल जीवन का पर्याय बनती जा रही है। जी हाँ, चमचागिरी सीखिये, यदि आपको जीवन-रूपी 'रेस' में निरन्तर आगे बढ़ते रहना है।

यों यह कला नयी नहीं है। प्राचीन काल में इसे खुशामद एवं चाटुकारिता की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। राजदरबारों के खुशामदी दरबारी और चाटुकार कवि इस कला के चमत्कारिक प्रभाव से भली-भाँति परिचित थे। आप ऐसे कवियों की काव्य-रचनाओं के पृष्ठ पलटते जाइये, उनकी यह कला उनकी रचनाओं में मूर्तिमन्त होती नजर आयेगी। राजा अथवा सम्राट् परले सिरे का मूर्ख ही क्यों न हो, किन्तु इन कवियों की लेखनी की कृपा से वह समस्त गुणों एवं कलाओं का सागर बन गया।

चमचागिरी कलियुग की कामधेनु से कम नहीं है। आप चमचागिरी से होनेवाले लाभों की चिन्ता मत कीजिए। आपका कार्य है—श्रद्धा एवं भक्ति-भाव से चमचागिरी करते रहना। आप चमचागिरी शुरू तो कीजिए, फिर आप देखिये कि इस कला से उद्भूत लाभ आपकी सेवा में स्वयं दौड़े आते हैं। ज्ञान की प्रत्येक शाखा के कुछ-न-कुछ निर्देशक सिद्धान्त होते हैं। चमचागिरी करते समय आपको भी इसके निर्देशक सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखना होगा और उन पर पूरी ईमानदारी से अमल करना होगा। यदि आप इस कला के सिद्धांतों पर ईमानदारी से अमल कर रहे हैं, तो ईश्वर ने चाहा इससे होनेवाली सम्पूर्ण कृपाओं से आप निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे। प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि चमचागिरी करते समय आप चेहरे पर इस प्रकार का भाव दर्शाइये कि आप जो कुछ भी बात कह रहे हैं, वह पूरी संजीदगी के साथ कही जा रही है। दूसरे, आप अपनी बातों के मध्य समय-समय पर इस बात को परोक्ष रूप से दोहराते रहिये कि आपके बराबर उनका (अर्थात् जिनकी चमचागिरी की जा रही है) शुभचिन्तक और कोई है ही नहीं (यों मान अपने

न्तरतम मे उनके सर्वनाश की कामना ही क्यों न रखते हों)। तीसरे, चमचा-गरी के दौरान आप अपने चेहरे पर 'गीता' में वर्णित निष्काम-भाव पैदा कीजिए, जिससे लोगो एव आपके 'प्रभु' को यह लगे कि इतनी सब बातों के पीछे आपका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है। यदि आप इन निर्देशक तत्त्वो को अक्षरशः अपनाने मे सफल हो गये, तो समझ लीजिए कि आपने मैदान मार लिया, आपको फतह मिल गयी।

चमचागिरी के अनेक लाभ हैं। एक-दो लाभ हों तो गिनाये भी जाएँ। चमचागिरी की कला मे पारगत लोग ही इसके चमत्कारिक लाभो को जानते हैं। अब यह आपका काम है कि आप इन 'चमचो' की सफल चमचागिरी करें, जिससे वे रहम खाकर आपको भी इस कला के कुछ गुर और प्रमुख लाभ बतला दें। मैं यहाँ कुछ झाँकियाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। इन्हें पढकर आप कदाचित् इस कला से होनेवाले लाभो से अवगत हो सकें।

कुछ वर्ष पूर्व मुझे एक 'विद्वान' शिक्षाधिकारी महोदय (विद्वान शब्द पर इसलिए जोर दे रहा हूँ कि वे अपने-आपको आचार्य शुक्ल से कम नहीं समझते थे, जबकि वास्तविकता यह थी कि इन महोदय ने आचार्य शुक्ल का नाम मौके-बेमौके कहीं सुन लिया था) के अधीनस्थ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका कहना था कि उनके विचारो के सकलन मात्र से पी-एच० डी० की डिग्री ली जा सकती है (जबकि वे पी-एच० डी० का अर्थ भी नहीं जानते थे); और चमचागिरी की हद भी देखिये। उनके चमचे उनको भारत का अग्रणी शिक्षाविद् कहकर स्वयं को कृतार्थ अनुभव करते। उनके इन प्रशंसकों को इसका तात्कालिक लाभ मिल जाता। खाने-पीने आदि के मामलों मे ऐसे ही शुभचिन्तकों की सम्मति ली जाती। इसके अतिरिक्त कार्यालय में देर से पहुँचना, निर्धारित समय से पूर्व गृह-प्रस्थान, अतिरिक्त दायित्वो से मुक्ति आदि होनेवाले लाभ क्या कम हैं ?

मैं एक ऐसे सज्जन को जानता हूँ जिन्हें उनके तथाकथित अनेक मित्रगण समय-कुसमय घेरे रहते हैं। ये सज्जन पूर्वजो एवं अपने विद्यार्थी-काल की गौरव-परम्परा का बखान करते थकते नहीं। यहाँ एक बात मैं आपको राज की बता दूँ, किन्तु इसे आप अपने तक ही सीमित रखियेगा। दरअसल इन साहब ने हर परीक्षा सर्वाधिक लकीरों (कम लकीरो में शायद उन्हें अपमान की अनुभूति होती हो) के साथ उत्तीर्ण करने मे ही अपना गौरव समझा है। अब आप स्वयं समझ गये होंगे कि ये सज्जन सदैव रॉयल डिवीजन (तृतीय श्रेणी) प्राप्त कर अपने-आपको 'रॉयल' (अर्थात् राजकुमार) समझते रहे। जहाँ तक इनकी मित्र-मडली की बात है, प्रथम तो वे इन महानुभाव की इस गौरवपूर्ण परम्परा से भिज्ञ नहीं हो और यदि हो भी तो उनको इससे क्या लेना-देना ! उनकी दृष्टि मे तो

ये साहब लखनऊ के किसी बिगड़े नवाब एवं साथ-ही-साथ किसी मूर्धन्य विद्वान से कम नहीं। आचार्य शुक्ल एवं किसी राजकुमार की श्रेणी में इन साहब को बिठला देने से इन तथाकथित शुभचिन्तकों को 'कुछ' समय-समय पर प्राप्त होता रहे, तो इतना लाभ उठाने से भी मित्रगण क्यों चूकें ? समय का यही तो तकाजा है !

मुझे एक ऐसे महानुभाव के सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ जो अपने को स्वामिभक्ति, कर्तव्यपरायणता एवं ईमानदारी का मनीही मानते हैं। समय-समय पर ये महानुभाव उपदेश भी झाड़ते रहते हैं। इनका यह रिकार्ड रहा है कि बॉस बाहर रहें तो प्रतिदिन दफ्तर से देर से पहुँचा जाय (समय पर पहुँच जाने से शायद उनकी तौहीन हो)। और जब बॉस मुख्यालय पर हों तो समय से घटा-आधा घंटा पूर्व पहुँचकर अपने अन्य साथियों के सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी करने के अवसर का लाभ उठाया जाय। बॉस के सामने आवश्यकता से अधिक व्यस्त रहने का उपक्रम और बॉस की अनुपस्थिति में नियमित कार्यक्रम की उपेक्षा—ये इन महानुभाव की प्रमुख चारित्रिक विशेषताएँ हैं। अपने बॉस के एकमात्र अथवा सर्वाधिक शुभचिन्तक हैं, और इन्हें स्वप्न में भी उनके हित की चिन्ता बनी रहती है। वस्तुतः बॉस इनके लिए माई-बाप से कम नहीं।

हाँ, तो बन्धुओ ! अब आप स्वयं ही विचार कर लीजिए कि चमचागिरी की कला कितनी चमत्कारिक एवं फलदायिनी है। यह अलादीन के चिराग से किसी रूप में कम नहीं। कविवर रहीम न जाने किस मासूमियत से यह लिख गये—

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय ॥

यदि वे चमचागिरी की कला में निष्णात हुए होते तो इन पंक्तियों को न लिखकर वे कदाचित् निम्न पंक्तियाँ लिखकर आगे आनेवाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते—

चमचा नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन हल्दी औ' फिटकरी, हर्षित करे सुभाय ॥

तो अब आपने एक अच्छा 'चमचा' बनने का निश्चय कर ही लिया होगा। आज से ही प्रयास प्रारम्भ कर दीजिये, क्योंकि शुभ-कार्य में देर की आवश्यकता नहीं। प्रारम्भ में यदि आपको कुछ असफलता भी हाथ लगे, तो निराश होने की आवश्यकता नहीं। यह तो आपकी परीक्षा है। यदि आप निश्चय एवं तल्लीनतापूर्वक इस कला को सीखने में जुट गये, तो निश्चित रूप से सफलता आपके चरण चूमेगी और आप एक 'आदर्श' चमचा बनने का श्रेय प्राप्त कर सकेंगे।

लेखक-परिचय

अरनी रॉबर्ट्स, उ० मा० वि०, घाटोल, बांसवाड़ा ; आनन्दकौशल सक्सेना, २०१/११, तोपदड़ा, अजमेर; ओम अरोड़ा, १४१, एच. ब्लाक, श्रीगंगानगर; काशीलाल शर्मा, शिक्षा प्रसार अधिकारी, आसीन्द, भीलवाड़ा, कुन्दनसिंह सजल, रा० मा० वि०, गुरारा, खंडेला, सीकर; कुशल ठारवानी, गांधी विद्यालय, गुलाबपुरा, भीलवाड़ा; गुलाबचन्द रांका, रा० मा० वि०, हुरड़ा, भीलवाड़ा; गोपालप्रसाद मुद्गल, पाण्डेय मोहल्ला, डीग, भरतपुर; जगदीश सुदामा, श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चोहटा, उदयपुर; देवप्रकाश कौशिक, रा०मा०वि०, कोठियां, भीलवाड़ा; श्रीनन्दन चतुर्वेदी, रा० उ० मा० वि०, गुमानपुरा, कोटा; प्रेमपाल शर्मा, रा० उ० मा० वि०, सेवाड़ी, पाली; बसन्तीलाल महात्मा, रा० मा० वि०, सिंहपुर, चित्तौड़; योगेशचन्द्र जानी, ब्रह्मपुरी, बड़ी सादड़ी, चित्तौड़; रघुनाथ चित्रेश, रा० उ० मा० वि०, बेगूं, चित्तौड़; रमेश गर्ग, रा० उ० मा० वि०, निम्बाहेड़ा, चित्तौड़; राजेन्द्रप्रसाद सिंह डांगी, जिला स्काउट मास्टर, शाहपुरा, भीलवाड़ा; राधाकृष्ण शास्त्री, खाचरियावास, सीकर; विश्वनाथ पाण्डेय, रा० मा० वि० राजलदेसर, चूरू; विश्वम्भरप्रसाद शर्मा, विवेक कुटीर, सुजानगढ़; विश्वेश्वर शर्मा, श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चोहटा, उदयपुर, श्याम सुन्दर व्यास, रा० उ० मा० वि०, कपासन, चित्तौड़; श्रीमती क्षमा चतुर्वेदी, श्रोम भवन, मंगलपुरा, झालावाड़; श्रीराम शर्मा; सिराजुद्दीन सिराज, रा० मा० वि०, कोठियां, भीलवाड़ा; सुलतानसिंह गोदारा, भोरालवाला हायर [illegible] स्कूल, श्रीगंगानगर; हरगोविन्द गुप्त, रा० उ० मा० वि०, पटरू, [illegible] [illegible] बीकानेर; हेमप्रभा जोशी, हुलासचन्द्र जोशी, [illegible]
जेल-वेल, बीकानेर